

७२
जगाने का अपराध

व्यांग्य

BMR ७३६

2017/2097

सत्यमेव जयते
सत्यमेव जयते



नेशनल पब्लिशिंग हाउस • दिल्ली

पानिने
की
आपुष्ट

नरेन्द्र कोहली

BHARATIYA BHASHA PARISHAD, GRANTHALAYA
36A, Shakespeare Sarani, K. K. 17
Acc. No. 3817
Date 05/12/12

BBP - Granthalaya
4225 H/891/433

प्रकाशित

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, दिल्ली-११०००६
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण १९७३
© नरेन्द्र कोहली

जी० एल० कंपोजिंग एजेंसी
द्वारा सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली-११००३२ में मुद्रित



JAGANE KA APRADH
(Satire)
Narendra Kohli

अपने अग्रज मूषण
तथा रजनी भाभी की

क्रम

जगाने का अपराध	: १
अनागत	: १२
संकट और संस्कृति	: २५
रिसर्च एक्सपिरिएन्स	: ३०
बात	: ३५
रिश्तों से बढ़कर	: ४२
आत्महत्या	: ४८
रस-सिद्धान्त : पुनर्मूल्यांकन	: ५५
बाढ़ का नियन्त्रण	: ६०
नमस्ते	: ६५
अकाल पीड़ित देश और दूध का मेढक	: ७०

प्रेम
क
प्र
ए
प्र
स
मि
जी
स्म
बो
भ
कु
रे
म
ती
ख
च
कै
ल

प्रेम और राजनीति	: ७५
कर्तव्यनिष्ठ पड़ोसी	: ७६
प्रन्तरंग परिचय	: ८४
एक आधुनिक व्यक्ति की संहिता	: ८८
अंगूरों की बेल	: ९५
समर्पण	: ९६
मिट्टी में सड़ते नोट	: १०३
जीवन का मिशन	: १०८
स्मार्टनेस का मूल्य	: ११३
घोर कथा	: ११६
भविष्य के आदर्शों का निर्माण	: १२०
कुश्ती और भक्ति	: १२५
रेडीमेड युद्ध-विराम	: १३०
मन्दिर और स्कूल	: १३५
तीन लघु कथाएँ	: १३६
खबरें : अपनी और उनकी	: १४२
चाँदी की दीवार और निर्धन का सिर	: १४६
कैनोपी का स्वयंवर	: १५२
खोज गरीबी के कारणों की	: १६१



जगाने का अपराध

बाहर से भीतर तक थाने में सतर्कता नजर आ रही थी। सिपाही इधर से उधर तेजी से सरकारी जूते बजाते हुए आ-जा रहे थे—ठकाठक् ! और फाटक पर खड़ा सिपाही कुछ अधिक तन गया था। बहुत दिनों बाद एक केस आया था, जिससे सारे क्षेत्र में उत्तेजना फैल गयी थी और उसे फाटक पर से बार-बार लोगों की भीड़ हटाने की आवश्यकता पड़ जाती थी।

थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह अपना डंडा फटकार देता था—“भागो ! यहाँ कोई राशन-कार्ड बन रहे हैं !”

थानेदार के सामने एक कुरसी पर एक शरीफ आदमी बैठा था। उसकी कमीज और पतलून पर जगह-जगह खून के धब्बे लगे हुए थे। उसका चेहरा परेशान और दुखी था। उसके बाल बिखरे हुए थे। वह थका हुआ भी लग रहा था। उसने अपनी गर्दन कुरसी की पीठ पर टेक रखी थी।

एक आदमी जो अपने कपड़ों से बड़ा सम्भ्रान्त और फैशनेबल लग रहा था, उन दोनों के सामने खड़ा था। वह परेशान भी नहीं था और दुखी भी नहीं था। वह उग्र और उत्तेजित लग रहा था।

थानेदार मुस्कुरा रहा था। साला ! आज आया है काम का केस। नहीं तो किसी अफसर के आने पर थाने की सफाई होती थी और जुलूस के साथ-साथ शोभा के रूप में पुलिस चलती थी। न किसी को डाँट

सको, न किसी को मार सको, न गाली दे सको, न उत्कोच माँग सको । पुलिस की जिन्दगी ही नहीं रह गयी थी ।

उसने कुरसी पर बैठे परेशान आदमी को घूरा और फिर अपना घूरना खड़े आदमी पर स्थानान्तरित कर दिया ।

“तुमने इन्हें छुरा मारा ?” थानेदार से पूछा ।

“हाँ जी ! मारा ।” खड़े आदमी का मुख क्रोध से लाल हो गया, “और थाने के बाहर निकलते ही फिर मारूँगा ।”

“चुप बदमाश !” थानेदार ने स्कूल मास्टर्स की तरह मेज पर छड़ी बजायी, “बकवास मत कर !”

“थानेदार साहब !” वह आदमी तनकर बोला, “मुझे कुछ भी कह लीजिए, बदमाश मत कहिए । मैं शरीफ आदमी हूँ । सरकार को हर महीने इनकम टैक्स देता हूँ । साफ धुले हुए कपड़े पहनता हूँ । अच्छे-से अच्छे सैलून में जाकर बाल कटाता हूँ । आप मुझे बदमाश कहते हैं और मैं जनावर विल्किसन्स ब्लेड से भी केवल दो बार शेव करके उसे फेंक देता हूँ । आप मुझे बदमाश कैसे कह सकते हैं ?”

थानेदार हतप्रभ हो गया । फिर उसके चेहरे पर विरही कवियों-सी अनन्त वेदना उभरी । बोला, “विल्किसन्स ब्लेड ! कहाँ मिल जाते हैं तुम्हें । मैंने हर बाजार की हर दुकान से पूछा है, पर मुझे कहीं नहीं मिले ।”

“आपको कितने चाहिए ?” वह व्यक्ति बोला, “पाँच ब्लेडों का पैकेट साढ़े सात रुपये का ला दूँगा । जितने कहिए, ला दूँगा ।”

“साढ़े सात रुपये के पाँच !” थानेदार ने अपने होंठ चाटे, “अच्छा उन्हें छोड़ो । यह बताओ कि दो बार शेव करने के बाद अपने ब्लेडों का क्या करते हो ?”

“फेंक देता हूँ ।” वह व्यक्ति बोला ।

“फेंक देते हो !” थानेदार क्रुद्ध होकर लगभग खड़ा हो गया, “फिर कहते हो, तुम बदमाश नहीं हो । वेस्ट ! नेशनल वेस्ट ! तुम्हें चाहिए कि दो शेव करने के बाद वे ब्लेड तुम थाने में जमा करवाओ । तुम इतनी सी बात भी नहीं जानते कि हम कितना फारेन एक्सचेंज खर्च करके

विर्लिसन्स ब्लेड मँगवाते हैं और तुम दो शेव करके उन्हें फेंक देते हो और फिर कहते हो, तुम बदमाश नहीं हो !”

“नहीं, मैं बदमाश नहीं हूँ ।” वह व्यक्ति अकड़कर बोला, “गोल्ड फ्लैक सिगरेट पीनेवाला आदमी बदमाश नहीं होता ।”

“गोल्ड फ्लैक पीते हो ?” थानेदार ने फिर होंठ चाटे, “अच्छा अपने सिगरेटों में से हर हफ्ते एक पैकट थाने में जमा कर जाया करो, हम देखेंगे कि तुम असली गोल्ड फ्लैक पीते हो या नहीं ।”

“बहुत अच्छा ।” वह व्यक्ति बोला, “मैं कुरसी पर बैठ जाऊँ ?”

“बैठो ।” थानेदार ने बेरुखी से कहा और दूसरे आदमी की ओर मुड़ा, “हाँ साहब ! आप अपनी बात कहिए ।”

“देखिए !” उस व्यक्ति ने बड़े पीड़ित स्वर में कहा, “पहले हम पड़ौसी थे । इनसे हमारा काफी मेल-जोल था । काफी मित्रता हो गयी थी । एक बार इन्होंने मुझसे एक हजार रुपया माँगा । इनको अपनी बीमा पालिसी के पैसे देने थे और इनके पास पैसे नहीं थे । मैंने इन्हें एक हजार रुपये दिये...।”

“तुमने इनसे एक हजार रुपये लिये थे ?” थानेदार ने फैशनेबल आदमी से पूछा ।

“हाँ लिये थे ।” वह बोला, “रुपयों का क्या है, लेना-देना किसको नहीं होता ?”

“हाँ जी ! फिर ?” थानेदार ने पूछा ।

“फिर यह कि समय...।”

“ठहरिए !” थानेदार ने उसे टोका, “आपने इनसे लिखवाया था कि इन्होंने आपसे रुपये लिये हैं ?”

“जी हाँ !” थका हुआ व्यक्ति बोला, “वह कागज मेरे पास है ।”

“ठीक है ।” थानेदार ने आगे बढ़ने की अनुमति दी, “फिर ?”

“फिर यह कि समय बीतता गया ।” थका हुआ व्यक्ति बोला, “मैंने समझा था कि ये अपनी सुविधा से मेरे रुपये लौटा देंगे, पर इन्होंने रुपये नहीं लौटाये ।”

“आप लोग इस बीच भी मिलते रहे ?” थानेदार ने पूछा ।

“हाँ साहब ! मिलते रहे ।” थका हुआ आदमी बोला, “फिर एक समय आया जब मजबूर होकर मुझे इनसे रुपये माँगने पड़े । पहले तो ये टालते रहे, फिर नाराजगी दिखाने लगे और अन्त में इन्होंने मुझे एक हजार रुपये का चैक दे दिया....”

“देखिए थानेदार साहब !” फैशनेबल आदमी बीच में झपटकर बोला, “ये अपने मुँह से स्वीकार कर रहे हैं कि मैंने इनके एक हजार रुपये लौटा दिये थे । इनसे कहिए, ये अपना स्टेटमेंट लिखकर दें ।”

“क्यों साहब !” थानेदार ने थके हुए आदमी से पूछा, “आप अपने मुँह से स्वीकार कर रहे हैं कि इन्होंने आपका एक हजार रुपया लौटा दिया ?”

“मैं यह स्वीकार कर रहा हूँ कि इन्होंने मुझे एक हजार रुपये का चैक दिया था । यह मैंने स्वीकार नहीं किया है कि इन्होंने मुझे एक हजार रुपये दिये हैं ।” थका हुआ आदमी बोला ।

रुपये और चैक में कोई अन्तर है, क्यों थानेदार साहब ?” फैशनेबल आदमी बोला ।

“नहीं, कोई फर्क नहीं होता ।” थानेदार ने उत्तर दिया, “मुझे मेरा वेतन चाहे रुपयों के रूप में मिले या चैक के रूप में, मुझे कोई अन्तर नहीं पड़ता ।”

“वेतन में तो कोई अन्तर नहीं पड़ता ।” थका हुआ आदमी मुसकराया, “पर रिश्वत के रूप में यदि मैं आपको रुपये न देकर चैक दूँ तो फर्क पड़ेगा कि नहीं ?”

थानेदार ने चिन्ता की मुद्रा बनायी । फिर बोला, “हाँ रिश्वत में चैक के रूप में नहीं लेता । चैक बाद में फँसा देता है । हाँ साहब ! मैं आपसे सहमत हूँ कि कभी-कभी रुपये और चैक में अन्तर होता है । आगे बोलिए....”

थके हुए आदमी ने अपना वक्तव्य फिर आरम्भ किया, “चैक और रुपयों का भेद और भी बढ़ जाता है जब चैक कैश न हो सके । इन्होंने जिस एकाउण्ट का चैक दिया था, उस एकाउण्ट में पैसा नहीं था, इसलिए बैंक ने वह चैक लौटा दिया । देखिए है न भेद ?” वह थानेदार की ओर

मुड़ा "रुपया बैंक से नहीं लौटता, जबकि बैंक कभी-कभी लौट आता है।"

"हाँ साहब ! भेद होता है।" थानेदार ने चिन्तित स्वर में कहा, "मैंने इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया था। आपने मुझे बचा लिया। नहीं तो मैं सोच रहा था कि अब वेतन के समान ही रिश्वत भी मैं बैंक के रूप में ले लिया करूँगा। कभी-कभी अपराधियों के पास नगद रुपया नहीं होता। अब मैं बैंक कभी न लूँगा।"

"मेरी एक सलाह और मानिए !" थका हुआ आदमी बोला, "आप अपना वेतन भी बैंक के रूप में लेना बन्द कर दीजिए। कोई पता नहीं कि कब सरकार के एकाउण्ट में रुपया समाप्त हो जाये और उसका बैंक लौट आये। कभी-कभी यह भी होता है कि रुपये के रहते हुए भी सरकार रुपया गायब कर जाती है।"

"आप ठीक कहते हैं।" थानेदार ने अपना सर हिलाया, "मैजिस्ट्रियन पी० सी० सरकार को कई चीजें गायब करते हुए मैंने स्वयं देखा है। यदि सरकार रुपया गायब कर दे तो कौन बड़ी बात। वैसे सरकार और पी० सी० सरकार रिश्तेदार हैं क्या?"

"नहीं !" इस बार फैशनेबल आदमी बोला, "रिश्तेदार नहीं हैं। दोनों हमपेशा हैं। दोनों ही जादूगर हैं। चीजें गायब करने और निकालने में दोनों उस्ताद हैं।"

"तुम चुप रहो।" थानेदार ने उसे डाँटा, "हाँ जी ! आप बताइए, आगे क्या हुआ?"

थके हुए आदमी ने सोचने की मुद्रा बनायी और बोला, "जब वह बैंक बैंक ने वापस कर दिया तो मैंने फिर इनको टेलीफोन किया। मैंने इनको बताया कि बैंक ने इनका बैंक वापस कर दिया है। इन्होंने कहा कि तब इनका क्या दोष ? इन्होंने तो बैंक दे दिया। अब बैंक की जगह रुपया देना तो बैंक का ही काम है न !"

"क्यों थानेदार साहब !" फैशनेबल आदमी फिर बीच में बोला, "मैंने गलत कहा क्या ? आप अपने थाने के खजांची के नाम एक चिट्ठी मुझे दें कि वह मुझे पाँच सौ रुपया दे दे...।"

थानेदार यहाँ खूब जोर से हँसा। वह ठहाके पर ठहाके लगाता

रहा। कभी थके हुए आदमी की ओर देखता और कभी फैशनेबल आदमी की ओर और फिर हँसने लगता।

सहसा वह चुप होकर फैशनेबल आदमी से बोला, “बड़े चालाक बनते हो। मैंने भी बड़े-बड़े घाव देखे हैं। चमड़ी उधेड़ लूंगा, चमड़ी। क्या समझते हो अपने-आपको। मुझे चकमा देना चाहते हो। साले, बदमाश...!”

फैशनेबल आदमी हक्का-बक्का उसे देखता रहा। फिर बोला, “आप तो खाहमखाह ही नाराज हो रहे हैं। भला आपके होते हुए मैं अपने-आपको चालाक कैसे समझ सकता हूँ। आपको किस बात से लगा कि मैं आपको चकमा दे रहा हूँ?”

“तुमने कहा नहीं कि मैं अपने खजांची के नाम एक चिट्ठी तुम्हें दे दूँ कि वह पाँच सौ रुपये तुम्हें दे दे। क्यों वे ! क्यों दे दूँ ? तुम साले बहुत चालाक हो। अब मुझे लूटना चाहते हो?”

“मेरा मतलब यह नहीं था थानेदार साहब !” फैशनेबल आदमी ने सर खुजलाया, “मैं तो केवल एक उदाहरण दे रहा था। उदाहरण ! ताकि बात साफ हो जाये। मैं कह रहा था कि यदि आप ऐसा करें...!”

“पर मैं ऐसा कहीं ही क्यों ?” थानेदार बोला, “पर उदाहरण की बात और है। तुमने पहले क्यों नहीं कहा कि यह उदाहरण है। जब अपना बयान लिखकर दोगे तो पहले लाल स्याही से लिख देना—उदाहरण ! और बात साफ करने के लिए उसके नीचे लाल स्याही से लकीर भी खींच देना। अंडर लाइन कर देना, रेखांकित ! अब साली हिन्दी भी सीखनी पड़ रही है। तुम हमारी मुसीबत क्या समझो ! हाँ तो तुम्हारा उदाहरण क्या था ?”

“मेरा उदाहरण यह था कि,” फैशनेबल आदमी बोला, “आप अपने खजांची के नाम एक पत्र लिख दें कि वह पाँच सौ रुपये मुझे दे दे और वह मुझे रुपये न दे तो दोष किसका है ? आपका या खजांची का ?”

“खजांची का।” थानेदार गरजा, “वाई गाड खजांची का। वह साला ऐसा करेगा तो मैं उसका सर फोड़ दूंगा। नौकरी से निकलवा दूंगा, साले को ! क्या समझता है, वह अपने-आपको ! बुलाओ उसको !

कहाँ है वह ?”

“यह उदाहरण था, थानेदार साहब !” थका हुआ आदमी बोला ।

“ओ हाँ ! यह उदाहरण था ।” थानेदार बोला । फिर वह फैशनेबल आदमी की ओर मुड़ा, “तुम साले ऐसे घटिया उदाहरण क्यों देते हो, जिससे किसी की हानि हो जाये । अभी मैं खजांची को नौकरी से निकाल देता तो ? उसका जिम्मेदार कौन होता ? मेरे जी में आता है कि तुम्हारी ही खाल खींच लूँ । तुम मुझे बदमाश नजर आते हो । अब बताओ तुमने वह उदाहरण किसलिए दिया था ?”

“थानेदार साहब ! आप मेरी पूरी बात सुनें ।” फैशनेबल आदमी बोला, “आपकी चिट्ठी पर भी यदि खजांची रुपये नहीं देता तो दोषी खजांची है, उसी प्रकार मेरे बैंक पर यदि बैंक पैसे नहीं देता और बैंक लौटा देता है तो दोषी कौन है ? मैं या बैंक ?”

“बैंक । आफ कोर्स बैंक !” थानेदार बोला ।

“नहीं साहब ।” थका हुआ आदमी बोला, “यहाँ एक अन्तर है । इनके एकाउण्ट में रुपये नहीं थे ।”

“तो भी बैंकवालों का दोष है ।” फैशनेबल आदमी बोला, “उन्होंने जब सब लोगों के एकाउण्ट में रुपये रखे तो मेरे ही एकाउण्ट में क्यों नहीं रखे ? एक आदमी सारे सिपाहियों को रिश्वत दे और आपको न दे तो आप उसे क्या कहेंगे ?”

“बदमाशी । यह साफ-साफ बदमाशी है ।” थानेदार बोला ।

“यह बदमाशी ही नहीं है ।” फैशनेबल आदमी बोला, “यह उससे भी बड़ी चीज है । यह पक्षपात है । भाई-भतीजावाद है । यह भ्रष्टाचार है । देश डूब रहा है...।”

“एक अन्तर और है ।” थका हुआ आदमी बोला ।

“क्या ?” थानेदार ने पूछा ।

“वह यह कि आप थानेदार हैं । यह थानेदार नहीं है । यह आपके साथ अपनी तुलना क्यों कर रहा है ?”

थानेदार आग-बबूला हो गया, “मेरे साथ तुलना करता है ! बराबरी करता है ! बदमाश ! बैंक का कोई दोष नहीं है, तुम्हारा दोष है !”

फिर वह थके हुए आदमी की ओर मुड़ा, “वयान जारी रखो।”

“तो साहब ! काफी भगड़े के बाद इन्होंने मुझसे कहा कि मैं इनके घर आकर अपने रुपये ले जाऊँ।” थका हुआ आदमी बोला, “तब मैं इनके घर पहुँचा। इन्होंने दरवाजा खोलकर मुझे भीतर बुला लिया और पूछा कि मैं क्या चाहता हूँ। मैंने कहा कि मैं केवल अपने रुपये चाहता हूँ और चाहता हूँ कि रुपये देने के बाद ये मुझसे कोई वास्ता न रखें।”

“फिर क्या हुआ ?” थानेदार ने पूछा।

“फिर इन्होंने कहा कि ये रुपये ला रहे हैं। ये भीतरी कमरे में गये और एक बड़ा-सा चाकू ले आये। जब तक मैं सँभलूँ, इन्होंने मुझ पर दो बार कर दिये। इन्होंने मेरी हत्या का प्रयत्न किया। मर्डर...।”

“तुम साले हत्या करने चले थे ?” थानेदार ने फैशनेबल आदमी से पूछा, “तुम एक शरीफ आदमी को मार डालना चाहते थे !”

“देखिए, आप उनका पक्ष ले रहे हैं।” फैशनेबल आदमी बोला, “आपने मुझसे पूछा ही नहीं कि मैंने ऐसा क्यों किया।”

“क्यों किया ?” थानेदार ने पूछा।

“मैंने इनको देखते ही हजार रुपये के नोट इनको देने चाहे थे। पर इन्होंने कहा कि हमारा भगड़ा तो रुपयों का है, पर वैसे तो हम मित्र ही हैं। अब जब मैं इनके रुपये वापस कर रहा हूँ तो इनका और मेरा भगड़ा ही क्या। इसलिए हम घर के भीतर मैत्रीपूर्ण वातावरण में बैठकर बातचीत ही कर लें। मैं इनकी बातों में आ गया और ये मेरे घर में आ गये। फिर आप जानते हैं कि क्या हुआ ?” फैशनेबल आदमी फिर नाराज हो गया था।

“क्या हुआ ?” थानेदार ने पूछा।

“फिर इन्होंने मेरी बेटी और माँ दोनों को छेड़ा। मैं यह नहीं सह सका। मैं गुस्से में भीतर से चाकू ले आया और उन्माद की अवस्था में मैंने इन पर चाकू चला दिया।” फैशनेबल आदमी, थके हुए आदमी को घूर रहा था।

“तो तुमने इनकी बेटी और माँ को छेड़ा ?” थानेदार ने थके हुए आदमी को घूरा, “तुम जानते हो कि किसी की बेटी और माँ को छेड़ना

कितना बड़ा अपराध है ? इसके लिए यदि तुम्हारी हत्या भी हो गयी होती, तो कुछ नहीं होता । अभी तो तुम्हें दो ही चाकू लगे हैं । जाओ, घर चले जाओ ।”

“इनसे पूछिए,” थका हुआ आदमी बोला, “इनकी बेटी और माँ की आयु क्या है ?”

“क्या है ?” थानेदार ने पूछा ।

फैशनेबल आदमी हकलाया, “जी, मेरी माँ की आयु सत्तर वर्ष है और मेरी बेटी की तीन महीने ।”

थका हुआ आदमी हँसा, “मेरी आयु तीस वर्ष है । तीस वर्षों का एक व्यक्ति तीन महीने की बच्ची या सत्तर वर्ष की वृद्धा को छेड़ेगा ?”

“क्यों वे !” थानेदार बोला, “साले हमें उल्लू बनाता है ? इस आयु की बच्ची या वृद्धा को तो मैं भी नहीं छेड़ता । साले, यह तो फिर भी शरीफ आदमी है ।”

“आपकी बात और है थानेदार साहब !” फैशनेबल आदमी बोला, “आप तो सरकारी आदमी हैं । आप छेड़ें भी तो क्या ! पर यह किसी की बेटी और माँ को क्यों छेड़ता है ?”

“क्यों छेड़ते हो ?” थानेदार ने पूछा ।

“इनसे पहले पूछिए कि मैंने इनकी बेटी और माँ को कैसे छेड़ा ?”

“हाँ बताओ साले, कैसे छेड़ा ?” थानेदार बोला ।

फैशनेबल आदमी बोला, “जब ये हमारे घर में आये तो मेरी माँ और मेरी बेटी सो रही थीं । ये बहुत जोर-जोर से बोले, चीखे-चिल्लाये और वे लोग जाग पड़े । अब बोलिये वे लोग छेड़े बिना जाग गये क्या ? उनका दिमाग खराब था ?”

“तो छेड़ने का मतलब है जगाना ?” थका हुआ आदमी बोला ।

“छेड़ना अपराध जरूर है ।” थानेदार बोला, “किसी को जगाना अपराध नहीं है । मेरी घर वाली मुझे रोज सवेरे जगा जाती है ।”

“नहीं साहब ! जगाना पूर्णतः अपराध है ।” फैशनेबल आदमी बोला,

“आपकी घर वाली की बात और है, वह थानेदार की पत्नी है। वैसे तो किसी को जगाना घोर अपराध है।”

“कैसे ?” थानेदार ने पूछा।

“देखिए, भगतसिंह देशवासियों को जगाने के अपराध में फाँसी पर चढ़े। राजगुरु, सुखदेव, खुदीराम बोस, आजाद और इस देश के सारे शहीद देश को जगाने के अपराध में मृत्यु को प्राप्त हुए।”

“वह अंग्रेजों के समय की बात है।” थका हुआ आदमी बोला, “स्वतन्त्रता के बाद किसी को जगाना अपराध नहीं रह गया है।”

“हाँ साहब ! स्वतन्त्रता के बाद समय बदल गया है।” थानेदार बोला, “अंग्रेजों का समय होता तो मैं आपको कुरसी पर न बैठाकर नीचे फर्श पर बैठाता और दस जूते आपके सिर पर मारता। समय बदल गया है साहब !”

“समय तो बदल गया है।” फैशनेबल आदमी बोला, “आप देखिए, गोडसे को इसलिए फाँसी हुई कि उसने महात्मा गांधी को समाधि से जगाने की कोशिश की थी। केनेडी भाइयों को गोली इसलिए मारी गयी, क्योंकि वे अपने देश को जगा रहे थे। देखिए, प्रत्येक आन्दोलन में नेताओं को दंड मिलता है, क्योंकि वे किसी-न-किसी को जगाने का प्रयत्न करते हैं। चीन को हम अपना शत्रु मानते हैं, क्योंकि उसने हमें जगाने का प्रयत्न किया। पाकिस्तान हमारा शत्रु है, क्योंकि वह हमें सोने ही नहीं देता। अमरीका, रूस और दूसरे बड़े देश इस देश के सबसे बड़े मित्र हैं, क्योंकि उन्होंने सदा इस देश की जागृति का विरोध किया। वे चाहते थे कि यह देश सोया रहे। और उदाहरण दूँ ?” उसने पूछा।

“नहीं।” थानेदार बोला, “मैं कनविस हो गया हूँ और वोर भी। तुम साले कहीं टीचर हो जाओ। इतने उदाहरण दोगे तो सारे लड़के वोर होकर सो जायेंगे।”

“किसी को सुलाना अपराध नहीं है।” फैशनेबल आदमी बोला।

“तुम ठीक कहते हो।” थानेदार ने कहा और वह थके हुए आदमी की ओर मुड़ा, “इसने तुम्हें केवल छुरा मारने की कोशिश की है, सरकार को पता लगता तो तुम्हें गोली मार देती। अब मेरी बात

मानो ।”

“क्या ?” थके हुए आदमी ने पूछा ।

“इसके घर जाओ और इसकी बेटी और माँ को सुलाओ । या फिर इसे अनुमति दो कि यह छुरा मारकर तुम्हें सुला दे । सोना सेहत के लिए अच्छा होता है । जाओ, भागो, मुझे सोने दो ।”

और अपनी दोनों टाँगें मेज पर रखकर थानेदार सो गया ।

●●

अनागत

सन् २००० में फरवरी महीने की एक सुहानी सुबह !

राजधानी की पार्लियामेंट-स्ट्रीट, पर से एक जुलूस गुजर रहा है । सड़क पूरी तरह से भीड़-भड़क्के में खो गयी है । दूर-दूर तक सर-ही-सर नजर आ रहे हैं, जैसे हरी-भरी फसल पर टिड्डी-दल उतर आया हो ।

यह जुलूस कोई बड़ी विचित्र-सी चीज है । दूर से कभी तो वह एक बहुत बड़े स्टैथेस्कोप-सा लगता है, कभी इन्जैक्शन की सिरीज-सा, कभी हाजमे की दवाई की आठ खुराकों वाली बड़ी शीशी सा । उसके पास से टिक्चर आयोडीन और स्पिरिट की मिली-जुली गन्ध आ रही है । जुलूस की मिली-जुली आवाजें ऐसी लगती हैं, जैसे फटती हुई पट्टियाँ कराह रही हों, या सिरीज में से सीत्कार करती हुई दवा निकल रही हो ।

जुलूस के पास सारा आवश्यक साजो-सामान है । उन्होंने भंडे उठाये हुए हैं जिन पर रेड क्रॉस बना हुआ है । बड़े-बड़े वस्त्र-पट हैं, जिन पर नारे लिखे हुए हैं ।

वे ही नारे जोर-जोर से बोले जा रहे हैं :

“ऐसी सरकार”... एक आदमी चिल्लाता है ।

“नाश हो ।” शेष सब लोग, बूढ़ी औरतों के समान हाथ हिला-हिला-कर कोसते हैं ।

“पेट भरने को दो...” नेता फिल्मी अंदाज में पेट पर हाथ मारता है।

“रोटियाँ SSS ।” टिड्डियाँ पीछे-पीछे टरती हैं।

“हम नहीं खायेंगे ।” पहला व्यक्ति सर मारता है।

“विटामिन की गोलियाँ SSS ।” टिड्डियाँ कहती हैं।

संसद भवन के सामने पहुँचकर जुलूस में कुछ विशेष हलचल होती है, जैसे किसी ने कौड़ियों को मुट्ठी में अच्छी तरह फेंटकर उछाल दिया हो। जुलूस एक सभा का रूप धारण कर लेता है।

सभा में भाषण आरम्भ होते हैं :

पहला भाषण

मैं पूछता हूँ, आपसे, देश से, समाज से और सरकार से। जब नौकरियाँ नहीं हैं इस देश में, तो हमारी पीठ पर डाक्टर का ठप्पा लगाकर हमें किसी और प्रकार की मेहनत-मजदूरी करने से क्यों रोका जा रहा है। अब जब हम डाक्टर बन ही गये हैं तो हम क्या करेंगे? हम सिवाय डाक्टरी के और कुछ नहीं कर सकते। हमें नौकरियाँ दो, नहीं तो सरकार छोड़ दो।

दूसरा भाषण

भाइयो ! मैं कहता हूँ, कोई इन कसाइयों से पूछे, जब तुम्हारे देश में इतने मरीज ही नहीं हैं तो दुनिया-भर के मैडिकल कालेज क्यों खोल रखे हैं। यदि ये नये-नये मैडिकल कालेज इसी प्रकार खुलते रहे और इतने ही डाक्टर प्रति वर्ष बनते रहे तो डाक्टर गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले फेरी लगाते दिखायी पड़ेंगे—‘कान का इलाज करने वाला। बुखार ठीक करने वाला। दस्त का एक पुड़िया में इलाज करा लो SSS ।’

भाइयो ! यह सब कुछ अतुसंलित राजनीति के कारण है। जो शासन देश की जनसंख्या को बढ़ने से रोकने के लिए परिवार-नियोजन का आन्दोलन इतने जोर-शोर से चला रहा है, वह डाक्टरों की जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ने से रोकने के लिए कोई नियोजन आरम्भ क्यों नहीं करता ?

भाइयो ! मेरी यह माँग है कि या तो मैडिकल कालेज बन्द किये जायें, या फिर प्रत्येक कालेज से दस से अधिक डाक्टर एक वर्ष में न निकलने दिये जायें ।

तीसरा भाषण

भाइयो या डाक्टरों ! क्यों नौकरियाँ माँग किसी के गुलाम बनते हो ? या मैडिकल कालेज बन्द करवा क्यों वहाँ के प्रोफेसरों की नौकरियाँ छीनते हो । मेरा नारा है, न नौकरी माँगो, न किसी की नौकरी छीनो ।

तुम्हें रोजी चाहिए न ! वह मिलेगी । बिना मैडिकल कालेज बन्द करवाये या बिना नौकरी किये भी मिलेगी और आज भी मिल सकती है । साथियो ! तुम्हारी राह में न एम्पलाएमेंट एक्सचेंज बाधा है और न मैडिकल कालेज । तुम्हारी राह तो राजनीति ने छेक रखी है ।

आज यदि राजनीति की गंदी चालें बन्द हों और लोगों को मिलावट मिली चीजें खाने को दी जायें तो मरीज कई सौ गुना अधिक होंगे और आपको रोजी मिलेगी । मलेरिया, चेचक, हैजा इत्यादि बीमारियों के विरुद्ध अभियान बन्द किये जायें तो मरीज इतने होंगे कि आप सब का पेट भरकर भी बच जायेंगे । इसलिए व्यापारियों को खाने की चीजों में मिलावट के लिए खुली छूट दी जाये और भयंकर बीमारियों के विरुद्ध चलाये गये आन्दोलन बन्द किये जायें ।

डा० नारंग अपने क्लिनिक के सामने खड़े अपनी दाढ़ी नोच रहे हैं ।

“कोई नहीं । कोई साला नहीं ।” वे गुनगुनाते हैं, “कोई आया ? नहीं कोई राहरौ होगा, गुजर जायेगा । अब यहाँ कोई नहीं, कोई नहीं आयेगा ।”

सामने से सहाय साहब अपनी साइकिल पर मुन्ने को सामने बैठाये हुए, सीट पर से उस पर ग्रों भुके चले आ रहे हैं, जैसे क्रिकेट के मैदान में गेंदबाजी करनेवाले हों ।

“अब इसे नमस्ते भी करनी पड़ेगी।” डा० नारंग की आत्मा अपमान की पीड़ा से, घायल चमगादड़ के समान फड़फड़ाने लगी।

“नमस्कार सहाय साहब !” डा० नारंग के चेहरे पर, आस्तिक हिन्दू के वाध्य हो गोमांस खाने के वाद की प्रतिक्रिया है।

“नमस्कार !” सहाय साहब ने भूमते हुए ऊँट के समान, अफसरी अदा से सिर हिला दिया।

“सवेरे-सवेरे किधर ?” डा० नारंग ने ट्रैफिक के सिपाही के समान जबरदस्ती उनका मार्ग रोक लिया।

“मुन्ने को हल्का-सा जुकाम है।” सहाय साहब की पवित्र आत्मा जुकाम जैसी गलीज चीज का नाम लेते ही काँप गयी, “सोचा जरा डाक्टर को दिखा आऊँ।”

“आइए-आइए !” डा० नारंग के दाँतों की चमक ने सूर्य की किरणों को धोविया पछाड़ दिया।

“नहीं !” सहाय साहब की नाक कुछ और ऊँची हो गयी, “हम सदर तक जा रहे हैं डा० शर्मा के पास। सुना है वे अच्छे डाक्टर हैं।”

डा० नारंग के चेहरे पर कठोरता का यवनिका-पतन हुआ, “हद करते हैं साहब आप भी। मेरे मुहल्ले का मरीज डा० शर्मा कैसे देखेंगे ! भगड़ा हो जायेगा। इस मुहल्ले का डाक्टर मैं हूँ। आप मेरे पेट पर लात मारकर दूसरे डाक्टर के पास नहीं जा सकते।”...सहसा ही डा० नारंग का चेहरा गुम हो गयी गाय का सा दीन हो गया, “सहाय साहब ! आपको अपने इस सेवक की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आखिर हम भी तो यहाँ हैं। दूसरे, आपके मुहल्ले की नाक नहीं कट जायेगी ?”

“नहीं साहब ! नहीं !” सहाय साहब चिहुँककर बोले, “आप दवाई की शीशी के साथ एक लिफाफा तक मुफ्त नहीं देते। वैसे भी आपकी दवाई उतनी ताजा नहीं होती। और फिर जुकाम की बात है, कोई बड़ा बिल नहीं बनेगा।”

“जुकाम हो या छींक !” डा० नारंग बोले, “दो पैसे हम ही कमा लेंगे, तो क्या बुरा है। मैं यदि पैसा-दो पैसा ज्यादा ले भी लेता हूँ तो क्या हुआ, जनाव ! खुराक पूरी नापकर देता हूँ। दूसरों के समान

वेईमानी नहीं करता ।”

“कुछ भी हो साहब ! हम तो डा० शर्मा के पास ही जा रहे हैं ।” और सहाय साहब ने पतलून के पहुँचे को लपेट, उस पर क्लिप लगा लिया ।

“मैं कहता हूँ आप नहीं जा सकते ।” डा० नारंग कुछ तेज आवाज में बोले ।

सहाय साहब का मुन्ना जोर-जोर से रोने लगा, “यह आदमी पापा को डाँट रहा है आँऽऽ । सब लोग मेरे पापा को डाँटते रहते हैं आँऽऽ ।”

सहाय साहब जेब से रुमाल निकालकर मुन्ने की नाक साफ करने लगे ।

उन्होंने साइकिल के पैडल पर पैर रखा और साइकिल को ठेला ।

डा० नारंग ने दौड़कर पीछे से साइकिल को पकड़कर घसीटा, “मेरे पेट पर लात मारकर कहाँ जा रहा है वे !”

डा० नारंग और सहाय साहब में हाथापाई होती रही और सहाय साहब का मुन्ना जोर-जोर से रोता रहा, “यह आदमी मेरे पापा को मार रहा है आँऽऽऽ ।”

सहाय साहब के हाथों से साइकिल छूटकर गिर पड़ी ।

डा० नारंग उनके मुन्ने को गोद में उठाकर अपने क्लिनिक में घुस गये, “कैसे नहीं करायेगा इलाज ? मैं भी देखूँगा ।”

“हाय मेरा सर फोड़ दिया ।” सहाय साहब पीछे से चिल्लाये, “खून ! खून ! देखो खून निकल आया ।”

“अच्छा ! अच्छा ! तेरी भी पट्टी करता हूँ ।” डा० नारंग चीख-कर बोले ।

“आज का दिन अच्छा है । सवेरे-सवेरे दो-दो केस ।” उनका सर प्रसन्नता में स्प्रिगदार गुड़िया के समान हिल रहा था ।

डा० शर्मा ने सरसों के तेल की अच्छी तरह मालिश की और आँगन में

दो ईंटें समानान्तर रखकर कसरत करने लगे ।

अभी चार-पाँच डंड ही लगाये थे कि उनकी पत्नी फुंकारती हुई आ गयी, “कनौडिया तेल का डब्बा रसोई से कौन लाया ?”

“मैं लाया हूँ ।” डा० शर्मा उठकर बैठ गये ।

“क्यों लाये, पकौड़े तलने हैं क्या ? उनकी पत्नी ने हाथ भटककर पूछा ।

“नजर नहीं आता, मालिश की है ।” डा० शर्मा ने डाँटा, “सुबह-सुबह भगड़ा जरूरी है क्या ?”

“भगड़ा मैं करती हूँ कि तुम ?” पत्नी बोली, “खरीदते वक्त तो एक किलो का डब्बा खरीदने में कष्ट होता है और मालिश करते हुए आध-आध किलो तेल आँधा देंगे । तुम डाक्टर हो कि पहलवान ?”

“वात यह है,” डा० शर्मा अपनी पत्नी के पास आ गये, “आज डा० नारंग के मुहल्ले में एक केस देखने जा रहा हूँ । भगड़ा होने का अंदेशा है । अब कोई भी डाक्टर यह वर्दश्त नहीं करता कि दूसरे मुहल्ले का कोई डाक्टर उसके मुहल्ले में आये । एक तो लोग बीमार ही बहुत कम पड़ते हैं । बीमार हो जायें तो डाक्टर के पास नहीं जाते । जो लोग डाक्टर को बुलाते हैं, वे भी दूसरे मुहल्ले का डाक्टर बुला लें तो मुहल्ले का डाक्टर भूखा मर जायेगा ।”

“दंगा-फसाद ही करना है तो दो-चार गुंडे पाल लो ।” पत्नी ने मुँह बनाया ।

“ठीक कहती हो,” डाक्टर शर्मा बोले, “वह भी है ध्यान में मेरे । डा० नागपाल ने चार गुंडे रख भी छोड़े हैं, पर मेरी अभी आय उतनी नहीं हुई । इसलिए तब तक तो खुद ही कसरत करूँगा ।”

“इससे तो पान की दुकान ही लगा लो ।” पत्नी तेल का डब्बा उठा रसोई में चली गयी ।

विजय बाबू दुविधा में खड़े-के-खड़े रह गये । किसके पास जायें ?

सामने तीन-तीन डाक्टरों की दुकानें साथ-साथ थीं। डा० नागपाल, डा० वर्मा और डा० पासी—तीनों के बड़े-बड़े बोर्ड लगे हुए थे। विजय बाबू निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि किसके पास जायें। साधारण-सी खाँसी-जुकाम की शिकयात थी। डा० नागपाल का नाम अधिक था। डा० वर्मा की डिग्रियाँ अधिक थीं और डा० पासी की फीस सबसे कम थी। कौनसी बड़ी बीमारी थी। कोई भी ठीक कर देगा। तो क्यों न डा० पासी के पास जायें, पैसे कम खर्च होंगे।

उन्हें डिग्रियों और नामों से क्या करना था? उन्हें तो अपनी तकलीफ दूर करनी थी और जहाँ से वह कम-से-कम पैसें से हो, वहीं से ठीक है।

वे डा० पासी की दुकान की ओर बढ़े।

तभी डा० नागपाल अपनी दुकान से बाहर निकले। उन्होंने विजय बाबू को देखा।

“आइए ! आइए विजय बाबू !” उन्होंने आगे बढ़कर हाथ मिलाया, “कहिए ! कैसे आना हुआ ?”

और वे उनका हाथ पकड़े-पकड़े अपनी दुकान की ओर बढ़े।

तब तक अपनी दुकानों के भीतर बैठे हुए डा० वर्मा और डा० पासी ने भी किसी डाक्टरी यन्त्र से या अपनी सहज व्यापार बुद्धि से सूँघ लिया कि कोई मरीज आया है। वे दोनों भी दुकानों के दरवाजे पर खड़े हो गये।

“आइए ! विजय बाबू !” हमारे यहाँ शुद्ध और सस्ती दवाइयाँ मिलती हैं।” डा० पासी ने हाँक मारी।

“विजय बाबू ! मेरी दवाइयाँ सब विदेशी हैं।” डा० वर्मा बोले, “वे पहाड़गंज में बनी हुई नकली लेबलों वाली नहीं हैं।”

उन्होंने डा० नागपाल पर दृष्टि पसारी।

विजय बाबू रुक गये। वे अपने निर्णय के विषय में सोच रहे थे।

“डाक्टर साहब ! मैं...” उन्होंने डा० नागपाल से कुछ कहना चाहा।

“आप मेरे मरीज को जबरदस्ती नहीं ले जा सकते डा० नागपाल।”

ल, डा० पासी लपके ।

“यह धक्केशाही नहीं चलेगी ।” डा० वर्मा झपटे ।

“मुझे छोड़ो । मुझे छोड़ो ।” विजय बाबू चीख रहे थे ।

तब तक तीनों डाक्टर गुत्थमगुत्था हो चुके थे और विजय बाबू को पता नहीं था कि उनके हाथ किसने पकड़ रखे हैं, उनकी टाँग उखाड़ने के फेर में कौनसा डाक्टर है और उनकी गर्दन किसकी उँगलियों के दबाव में चीख रही है ।

उस सारे हंगामे और धक्कामपेल में वे चारों डा० नागपाल की दुकान के भीतर पहुँच गये थे और विजय बाबू लम्बी मेज पर लेटे हुए थे ।

क्षणभर को तीनों डाक्टर उन्हें छोड़कर कहीं गायब हो गये ।

विजय बाबू को कुछ राहत मिली । वे उठ बैठे । उन्होंने नजर घुमाकर देखा—तीनों में से एक भी डाक्टर वहाँ नहीं था । उन्होंने दोनों बाँहों को एक-दूसरे की सहायता से दबाया । टाँगों की थोड़ी-सी मालिश की और गर्दन की स्थिति जानने के लिए उँगलियाँ वहाँ तक पहुँचाई ही थीं कि तीनों डाक्टर एक साथ ही अवतरित हो गये ।

फिर वही धींगामस्ती आरम्भ हो गयी । कौन क्या कर रहा था—किसी को पता नहीं चला ।

इंजेक्शन की सिरिज विजय बाबू की बाँह में घुसी तो वे चीखकर उठ बैठे, पर तब तक एक कैपसूल और दो उँगलियाँ उनकी हलक तक घुसपैठ कर चुकी थीं और कोई मिक्सचर की शीशी उनके नथुनों से चिपककर आधा मिक्सचर नाक में उड़ेल चुकी थी ।

विजय बाबू को स्वयं पता नहीं चला कि इनमें से किसके कारण उनमें अद्भुत बल आ गया और वे तीनों डाक्टरों को धक्का मारकर, उछले और दुकान से बाहर आ गये ।

अगले ही क्षण, ऐन चौराहे के बीच ट्रैफिक कांस्टेबल के स्थान पर विजय बाबू खड़े थे और चीख-चीखकर कह रहे थे :

“भाइयो !

अब अन्याय और नहीं रहा जाता । संविधान में जहाँ हमें और

मौलिक अधिकार दिये गये हैं, वहीं हमें अपना डाक्टर चुनने की स्वतन्त्रता का भी अधिकार मिलना चाहिए।

मैं आज मौलिक अधिकार-सुरक्षा-संघ के निर्माण की घोषणा करता हूँ। संघ का कार्यालय मेरे घर पर ही रहेगा। आप लोग सदस्य बनकर मुझे बल दें।

हमारा कार्यक्रम आज से ही आरम्भ होता है। हम डाक्टरों द्वारा अपने मौलिक अधिकारों के भंग के विरुद्ध संसद भवन के सामने प्रदर्शन करेंगे।

रोगी एकता—जिन्दावाद !”

दिल्ली-पुलिस के महानिदेशक के कार्यालय में बहुत भीड़ थी। पुलिस की विभिन्न शाखाओं के सभी ऊँचे अधिकारी उपस्थित थे। एक विचित्र-सी गम्भीरता वहाँ छायी हुई थी, जैसे इण्टरव्यू के लिए बुलाये गये नौकरी के प्रत्याशी-समूह पर छायी होती है।

महानिदेशक कमरे में आये तो सब लोग चुपचाप उठ खड़े हुए और उनके संकेत पर वैसे ही चुपचाप बैठ गये।

महानिदेशक ने किसी प्रकार की भूमिका के बिना ही कहना आरम्भ किया, “आप जानते हैं कि हमारे नगर की स्थिति बहुत भयंकर हो उठी है। देश की राजधानी होने के कारण हमारा उत्तरदायित्व अन्य नगरों की पुलिस से अधिक है।

“इस समय स्थिति अत्यन्त विकट है। पिछले दिनों विभिन्न स्थानों पर कुछ ऐसी घटनाएँ हुई हैं, और उन घटनाओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है, जिससे गृहमंत्री तक चिन्तित हो गये हैं।

“पिछले सप्ताह पथराव की घटनाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जब नगर के विभिन्न भागों में आवे दर्जन स्थानों पर पथराव की घटनाएँ न हों। पथराव की घटनाएँ पहले भी होती थीं। पर तब बात और थी। कहीं प्रदर्शन हो, जुलूस निकले, सभा हो—उसमें

गड़बड़ होती थी और भीड़ पथराव करती थी। पर अब अकारण ही, बिना किसी बात के पथराव हो जाता है। आज तक इसका कोई कारण ही हम खोज नहीं पाये हैं। होता यह है कि जहाँ कहीं सौ-दो सौ आदमी हों—वहाँ कहीं से एक दल पहुँच जाता है और भीड़ पर पथराव कर गायब हो जाता है। समझ में नहीं आता कि भरे बाजारों में वे लोग कहाँ से आते हैं और कहाँ गायब हो जाते हैं। पत्थर कहाँ से आ जाते हैं और आखिर यह पथराव क्यों होता है, किन लोगों पर होता है।

“ एक दूसरी प्रकार की घटनाएँ और भी विचित्र हैं। इस प्रकार भीड़ के बीच कोई भी व्यक्ति चीख मारकर उछल पड़ता है। फिर वह शोर मचाना आरम्भ कर देता है कि किसी ने उसे सुई चुभाई है। भगदड़ मच जाती है। भीड़ वाला स्थान। किसी को भी रोकना कठिन हो जाता है। उस धक्कामपेल में कुछ लोग घायल हो जाते हैं और वह व्यक्ति जिसे सुई चुभायी गयी होती है, घर पहुँचने तक अवश्य ही बीमार पड़ जाता है।

“ तीसरी प्रकार की घटना, सबसे अधिक भयंकर है। पिछले एक सप्ताह में चार बार दिल्ली के विभिन्न पम्पिंग स्टेशनों पर आक्रमण हुए हैं और नगर में वितरित होने के लिए साफ किये गये जल में रोगों के कीटाणु मिलाने के प्रयत्न किये गये हैं। ”

वे रुककर कुछ क्षण उपस्थित अधिकारियों को देखते रहे, फिर बोले, “ इन तीन प्रकार की घटनाओं में अभी तक कोई अपराधी पकड़ा नहीं गया है। पर सन्देह यह है कि राजधानी में कुछ विदेशी एजेंट सक्रिय हो उठे हैं और यहाँ के सामान्य जन-जीवन में अव्यवस्था फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

“ आपको यहाँ बुलाकर इसलिए कष्ट दिया गया है कि आप स्थिति की गम्भीरता को समझें और उसके प्रति सचेत रहें। कोई प्रश्न...? ”

और उनकी दृष्टि फिर उपस्थित अधिकारियों पर जम गयी।

विजय बाबू ने अपने सामने खड़े सेल्समैन को घूरकर देखा। वह घरेलू आवश्यकता की चीजें बेचने के लिए आया था।

“तुमको पता है, तुम्हें फलू है और ऐसी अवस्था में तुम्हें अपने घर से बाहर कदम नहीं रखना चाहिए?” उन्होंने पूरी ताकत से चीखकर पूछा।

“जी!” सेल्समैन का चेहरा बुखार से तप रहा था और उसकी आँखें चढ़ी हुई थीं। वह खाँसते हुए बड़ी धीमी आवाज में बोला, “हमारी कम्पनी हमें छुट्टी नहीं देती। अभी मैं कन्फर्म नहीं हूँ। नौकरी का मामला है। इसलिए ऐसी हालत में भी निकलना ही पड़ता है।”

विजय बाबू पर उसकी दीनता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे पहले से भी तेज आवाज में चीखे, “तुम गरीब हो या बदमाश हो! जान-बूझकर फलू की इन्फेक्शन घर-घर फैला रहे हो ताकि अधिक-से-अधिक लोग बीमार पड़ें। बता, किस डाक्टर ने भेजा है तुम्हें?” और विजय बाबू ने जोर का धक्का देकर उसे फर्श पर गिरा दिया।

वह अचकाया-सा, फर्श पर पड़ा उन्हें देखता रहा। उसे फिर खाँसी आ गयी। वह काफी देर तक खाँसता रहा और खाँसकर बोला, “आप मुझे गलत समझे। किसी के बीमार होने से मुझे क्या लाभ। मैं गरीब आदमी हूँ। अपने बाल-बच्चों के लिए रोटी कमाने निकला हूँ। किसी को बीमार करने नहीं।”

विजय बाबू ने उसे जोर की एक ठोकर मारी, “उल्लू के पट्ठे! तू ऐसे नहीं बतायेगा।”

वह रो पड़ा। उसकी आँखों से आँसू वह-वहकर गिरते रहे। विजय बाबू ने उसकी टाँग पकड़ी और मरे हुए कुत्ते की तरह घसीटते हुए बाहर गली में उसे ले आये। उसे बीच गली में पटककर वे जोर-जोर से चीखने लगे, “देखो! रोगी-एकता-संघ के सदस्यो देखो! अब डाक्टर यहाँ तक बदमाशी पर उतर आये हैं। वे बीमार और रोगी लोगों को पैसे देकर भले आदमियों के घर भेज देते हैं, ताकि वे लोग इन्फेक्शन फैलायें और उनके ग्राहक बढ़ायें। देखो! देखो!”

और उन्होंने गली में पड़े ठंड से ठिठुरते सेल्समैन को एक ठोकर और

जमा दी ।

लोग अपने-अपने घरों से निकलकर गली में जमा होते जा रहे थे । सब लोग धृणा से उस सेल्समैन को देख रहे थे । किसी के हाथ में पत्थर था, किसी के पास लकड़ी की छड़ी थी और कोई-कोई लोहे की छड़ ले आया था ।

उस बढ़ते हुए शोर-शराबे में सेल्समैन बार-बार जीभ से अपने होंठ गीले करके धीरे-धीरे कह रहा था, “मैं गरीब आदमी हूँ । मैं अपने बच्चों के लिए रोटी कमाने...”

उसकी बात कोई नहीं सुन रहा था । उसके चारों ओर भीड़ बढ़ती जा रही थी और भीड़ के साथ शोर भी तेज से तेजतर होता जा रहा था ।

गृहमंत्री पत्रकार-सम्मेलन के सामने वक्तव्य दे रहे थे :

“राजधानी में ये घटनाएँ बढ़ती चली गयीं । पर ये सारी घटनाएँ कुछ इतनी भिन्न थीं कि उनमें कोई तालमेल ही नहीं बैठ रहा था । देखने से ऊपरी तौर से यही लगता था कि कुछ विदेशी एजेण्ट हमारी राजधानी में अव्यवस्था और अराजकता फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं ।

“पर हमारी पुलिस ने अपनी छान-बीन से कुछ इससे भी गहरे अपराध के रोमांचक तथ्यों का उद्घाटन किया है । अपनी छान-बीन के पश्चात् पुलिस इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि इस नगर के कुछ लोगों ने मिलकर एक गुप्त संस्था बनायी है । इस संस्था का कार्य यह है कि अपने प्रयत्नों से लोगों को अधिक-से-अधिक संख्या में रोगी और घायल किया जाये—वह चाहे भीड़ पर पथराव करके हो, लोगों में रोग के कीटाणु इंजेक्ट करके हो अथवा पीने के पानी में जहरीली दवाएँ और रोगों के कीटाणु मिलाकर हो ।

“और इन कार्यों का उद्देश्य केवल इतना है कि रोगियों की कमी के कारण, जो अधिकांश डाक्टर भूखे मर रहे हैं, उन्हें रोजगार मिल सके

और उनकी रोटी का प्रबन्ध हो सके । ”

गृहमन्त्री थोड़ा सस्पेंस देकर बोला, “आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इस नगर के अधिकांश डाक्टर इस संस्था के सदस्य हैं और कल रात के अपने छापों में, पुलिस ने नगर के विभिन्न खण्डों में से डेढ़-सौ डाक्टर बंदी कर लिये हैं ।”

“डेढ़-सौ !” कई पत्रकार कोरस के स्वर में चीख पड़े ।



संकट और संस्कृति

मैंने तो केवल एक गंजी पत्नी का पति होने से बचने का प्रयत्न भर किया था, पर कैंची चल गयी भारतीय संस्कृति पर। बात मेरी समझ से परे है, पर है यही बात। भारतीय संस्कृति को व्यर्थ इधर-उधर टाँग अड़ाते फिरने की बड़ी बुरी आदत है। जहाँ कहीं कैंची, चाक, छुरी चलती है—वहीं बीच में संस्कृति आ धँसती है। परिणाम यह होता है कि और किसी को तो कुछ होता नहीं, व्यर्थ ही संस्कृति घायल होती रहती है। नंगे पैर रहें तो पैरों को कष्ट होता है, कपड़े के जूते पहनें तो जेब को कष्ट होता है, क्योंकि पैसे अधिक खर्च होते हैं; और यदि चमड़े के जूते पहनें तो हमारी संस्कृति को कष्ट होने लगता है।

हुआ यूँ था कि मेरी पत्नी के बाल रोज-रोज झड़ते जा रहे थे और वह गंजी होती जा रही थी। एक ओर मैं प्रसन्न भी था कि अब मुहल्ले के लोग उसे कम घूरेंगे तो दूसरी ओर इस आशंका से भी पीड़ित था कि लोग मुझे गंजी स्त्री का पति कहेंगे। और मेरी पत्नी जी-जान से इस बात में जुटी हुई थी कि किसी प्रकार लोगों को यह पता न चले कि वह गंजी हो रही है। उसके लिए वह दिनभर हेयर-हंटिंग करती थी। कभी बाजार से बने-बनाये जूड़े लाती थी और कभी पड़ोस के बच्चों की माँओं से, बच्चों की कंधी करने में निकले हुए बाल माँग लाती थी।

जब मेरी पत्नी सौन्दर्य-प्रसाधनों के नाम पर गंदी चीजों के संकलन

पर उतर आती है तो मेरी फैशन-बुद्धि आग पड़ती है। मैंने उसे सुझा दिया कि वह अपने बाल कटवा ले। फैशन के नाम पर वह पराभूत हुई और जाकर बाल कटवा आयी। मुहल्ले की स्त्रियों ने उसकी बुद्धि पर काफी आँसू बहाये कि उसने अपना अच्छा-खासा रूप बिगाड़ लिया; और पश्चात्ताप में अगले ही दिन और आधी दर्जन औरतें जाकर अपने-अपने बाल कटवा आयीं।

जब यह सब हो रहा था और मैं अपनी पत्नी का मोराल ऊँचा बनाये रखने के लिए उसके प्रति अपना प्यार जताने पर पिछले कार्यक्रम से दुगुना समय लगा रहा था, पत्नी के सामने दूसरी बाल-कटी स्त्रियों का मजाक उड़ा रहा था और उनके मुँह पर उनकी प्रशंसा कर रहा था—तब मैं यह नहीं जानता था कि इसका परिणाम क्या होगा। गीता में निष्काम कर्म का उपदेश देते हुए भी भगवान् कृष्ण नहीं जानते थे कि महाभारत का परिणाम क्या होगा। हुआ क्या, संसार का नाश हुआ, यदुकुल समाप्त हुआ और यदुकुल की स्त्रियों को अमीर लोग लूटकर ले गये। और मेरे साथ क्या हुआ : मुहल्ले के आध दर्जन भले लोगों से, (उनकी स्त्रियों को बाल कटाने के लिए प्रोत्साहित करने के अपराध में) लड़ाई हो गयी और भारतीय संस्कृति पर कैंची चल गयी, वह अलग।

भारतीय संस्कृति पर कैंची चलने का पता मुझे काफी देर बाद चला। मेरे एक मित्र हैं। हमारे नगर में भारतीय संस्कृति की सोल एजेन्सी उन्हीं के पास है। बहुधा वे थोक के भाव, उसे लोगों की भेंट चढ़ाते रहते हैं। उस दिन भी संस्कृति का कोई छोटा-मोटा पैकेट देने आये थे कि मेरी पत्नी को देखकर भौंचक रह गये। बड़ी करुण वाणी में बोले, “भाभीजी ! आपने क्या कर डाला ? आपने अपनी संस्कृति क्यों छोड़ दी ?”

मैं अपनी पत्नी के बचाव को आया। एकदम मूर्खों के समान बोला, “बाल कटाये हैं, संस्कृति तो नहीं छोड़ी।”

पर मैं समझ गया कि संस्कृति पर कैंची चल चुकी थी।

यारों ने एक दिन पकड़ा और कैबेरे नाच दिखाने ले चले। मैं बहुत छटपटाया। बोला, “भई मैं शरीफ आदमी हूँ। मुझे क्यों पाप के पंक में

घसीटते हो। वीवी-वच्चे वाला आदमी कैबेरे देखता अच्छा नहीं लगता।” पर वे लोग नहीं माने। उल्टे मुझ पर खूब हँसे। कहने लगे, “देखो साले को ! एडवांस्ड इतना है कि वीवी समेत मुहल्ले की सात औरतों के बाल कटवा दिये और अब कैबेरे देखते हुए हनुमानजी का भक्त ब्रह्मचारी बन जाता है।”

मेरी एक न चली। यारों ने कैबेरे नाच दिखाया। कनाट प्लेस में बैठकर मुर्गा खिलाया और घर लाकर शराब पिलायी। किसी बात से उन्हें रोक नहीं पाया। पत्नी के बाल जो कटवा दिये थे।

पर सबसे बड़ा भटका मुझे स्वयं मेरी पत्नी ने दिया। उसने लाकर अपने गहनों का डब्बा मेरे हाथ में पकड़ा दिया। बोली, “बैंक चले जाइए और इन गहनों को लॉकर में रख आइए !”

“अब इनकी आवश्यकता नहीं रही ?” मैंने पूछा।

बोली, “वाब्ड वालों के साथ ये सोने के गहने नहीं चलते। अब पर्स का सेट लूंगी।”

मैं समझ गया कि कैंची बड़ी होशियार थी। वालों और संस्कृति को काटकर अब मेरी जेब काटने को तैयार थी। संस्कृति के कट जाने पर चिन्ता की कोई विशेष बात नहीं थी। आदमी कटी-फटी संस्कृति के साथ भी जी सकता है। पर कटी जेब के साथ जीना सम्भव नहीं है, और विशेषकर मुझ जैसे आदमी के लिए। पत्नी के कटे बाल और पति की कटी जेब एक साथ नहीं चलती।

जेब के संकट ने फिर फैशन-बुद्धि को झकझोरा। जेब के संकट को मैं दुनिया का सबसे बड़ा संकट मानता हूँ। नाजी संकट से भी बड़ा। नाजी संकट से दुनिया बच गयी, पर जेब के संकट से नहीं बच सकती। इस संकट से बचाने वाला एक ही देवता है—फैशन ! यूरोप को कपड़े के संकट से मिनि-स्कर्ट ने उबार लिया। भारत को अन्न-संकट से भिक्षु फैशन ने बचा लिया।

मैंने पत्नी को समझा दिया कि नया फैशन है—सादगी। कोई गहना नहीं, कोई चमक-दमक नहीं। भोली पत्नी मेरी बातों में आकर वावरी मीरा बन गयी। उसने गहने और चमक-दमक छोड़ दी। पर मैं

फिर नहीं जानता था कि इस फैशन का परिणाम क्या होगा—जैसे भारत यह नहीं जानता था कि तटस्थता के फैशन का परिणाम क्या होगा।

हुआ यह कि पत्नी ने अपनी सारी मूल्यवान साड़ियाँ अपनी बहनो में बाँटने का संकल्प कर लिया; क्योंकि जरी और गोटे के कारण साड़ियों में चमक-दमक थी। चमक-दमक की चीजें अब फैशन में नहीं थीं और वह फैशनेबल बनी रहना चाहती थी।

इस बार जेब का संकट पिछली बार से भी अधिक भयंकर था। गहनों से उसे ढाला जा सकता था, पर कपड़ों से नहीं ढाला जा सकता था। और जरी वाली साड़ियाँ बाँटने के पश्चात् उसके पास कुछ नहीं बचा था। वह सादगी के फैशन को अपनाकर, अपनी गरिमा बनाये रखने के लिए सादा-सी नजर आनेवाली तीन-चार सौ की टसर की साड़ियाँ खरीदने पर तुली हुई थी।

और तब, इस मुकाम पर मुझे अपनी संस्कृति की याद आयी। चिन्ता से गंजी होती हुई मेरी अपनी खोपड़ी में यह बात आयी कि अपनी संस्कृति पर कैंची चलवाकर मैंने अच्छा नहीं किया। अपनी समस्याओं के लिए विदेशी समाधान बहुधा जेब का संकट पैदा करते हैं। आखिर वेदों, पुराणों, रामायण और महाभारत के समय में भी स्त्रियाँ अवश्य गंजी होती होंगी। तब लोग अपनी संस्कृति से पूछकर, कोई देसी इलाज कराते होंगे। हो सकता है ब्राह्मी आँवला तेल ही इसका इलाज हो।

दूसरी बात भी मेरी समझ में आ रही थी। मैंने कबीर की बात न मानते हुए सारे वेद-पुराण पढ़ डाले हैं। मैंने इस कैंची से संस्कृति को बचाने का मार्ग तो पाया ही है, जेब को कटने से बचाने की समस्या भी कुछ-कुछ सुलभ गयी है। मेरा दावा है कि आप सारे संस्कृत-साहित्य में जेब पर आये संकट का वर्णन कहीं नहीं पायेंगे। उन लोगों ने वैसे मोक्ष प्राप्त किया हो, या न किया हो; पर जेब के संकट से वे मुक्त थे।

बात यहाँ भी संस्कृति की है, जीवन जीने की पद्धति की है। हमने विदेशी संस्कृति अपनाई तो सारे संकट आये। न पतलून पहनते, न जेबें होतीं, न जेबों पर संकट आते। न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी। वास्तव में विदेशी संस्कृति ने हमारा बेड़ा गर्क किया है। मैंने जब पच्चीस रुपये का

कपड़ा खरीदकर दर्जी को अपना नाप दिया था और दर्जी ने मेरे नाप के अनुसार उस कपड़े पर कैंची चलायी थी, तो मैं क्या जानता था कि कैंची कपड़े को नहीं काट रही, संस्कृति को काट रही है और संस्कृति कटने पर जेव का संकट आता है। तभी बाजार से धोती खरीदकर पहन ली होती तो कितना अच्छा होता। न कपड़े पर कैंची चलती, न संस्कृति कटती, न जेव पर संकट आता।



रिसर्च-एक्सपीरिएन्स

क : रिसर्च-एक्सपीरिएन्स की महिमा

उसको एक कालेज में नौकरी मिल गयी । मुझे नहीं मिली । वह उस नौकरी के लिए क्वालिफाइड था । मैं नहीं था । उसके पास दो वर्षों का रिसर्च-एक्सपीरिएन्स था । मेरे पास नहीं था । उसने अपने थीसिस की एक पंक्ति भी नहीं लिखी थी—थीसिस लिखने की तैयारी में एक पंक्ति भी नहीं पढ़ी थी । पर उसके पास दो वर्षों का एक्सपीरिएन्स हो गया था । उसने दो वर्ष पहले विश्वविद्यालय में पंजीकरण करवा लिया था । मैंने पंजीकरण नहीं करवाया था और थीसिस के लिए सामग्री इकट्ठी करता रहा था । पर रिसर्च एक्सपीरिएन्स तो पंजीकरण के बाद से होता है; पढ़ने-लिखने से नहीं । वैसे ही है जैसे स्कूटर के लिए बुकिंग करवानी पड़ती है—फिर अपने-आप बारी आ जाती है । उसने बुकिंग करवा रखी थी, उसे नौकरी मिल गयी । और मैं स्कूटर के लिए पैसे इकट्ठे करता रह गया ।

उसने मुझे बताया था कि अभी लगभग सात-आठ वर्ष और वह थीसिस का काम नहीं करेगा । इस प्रकार वह अपने लिए रिसर्च एक्सपीरिएन्स के दस वर्ष इकट्ठे कर लेगा । मैं समझ गया कि मैं पिछड़ गया हूँ । मैं जिस गति से काम कर रहा हूँ, उससे पंजीकरण के दो वर्षों के भीतर ही मेरा थीसिस पूरा हो जायेगा । जिन्दगी-भर मैं अपना रिसर्च-

एक्सपीरिएन्स दो वर्षों से अधिक नहीं बता सकूंगा और वह बिना हाथ हिलाये दस वर्षों का एक्सपीरिएन्स पा जायेगा । इसी ढंग से वह जीवन में कितने ही स्कूटर खरीद लेगा और मैं पैसे ही इकट्ठे करता रह जाऊंगा ।

ख : चौबीस घण्टों का रिसर्च-एक्सपीरिएन्स

मेरी पत्नी ने ठीक सवेरे सात बजे, मेरी फाइलों के साथ मुझे रिसर्च करने के लिए घर के दरवाजे से बाहर कर दिया । मैं भी बड़ी फुर्ती से बस स्टैंड पर आया । वहाँ, रोज के समान कोई बस नहीं थी । मैं जानता था कि मैं घण्टा-डेढ़ यहाँ खड़ा रहूँगा तो कहीं बस मिलेगी । दिल्ली में अपने मतलब की बस को पाना भी बेटी के लिए सुयोग्य बर पाने से कम सौभाग्य की बात नहीं है । तो घंटा-डेढ़ खड़ा रहूँ या कोई और सवारी ले लूँ ? पर स्कूटर या टैक्सी लेने का विचार वैसे ही छोड़ दिया, जैसे मास्टर बनकर समाज में सम्मान पाने का विचार छोड़ दिया था । पत्नी ने घर से चलते हुए साफ शब्दों में कह दिया था, “देखो ! बस में ही आना-जाना, चाहे कितना ही समय लग जाये । स्कूटरों-टैक्सियों पर पैसे खर्च मत करना, तुम रिसर्च करने जा रहे हो, कोई कमाई करने नहीं जा रहे ।”

मैं बड़ा बरखुरदार किस्म का पति हूँ । पत्नी की कही हुई बात वैसे ही याद रखता हूँ, जैसे बन्दर अपने नचानेवाले के आदेश याद रखता है । मैंने सोचा, यहीं स्टैंड पर बैठ जाते हैं । बस डेढ़ छोड़ दो घण्टों में मिली, तो भी घाटे में नहीं रहूँगा । बैठे-विठाये दो घण्टों का रिसर्च-एक्सपीरिएन्स हो जायेगा । जब से यह सूत्र हाथ लगा है, मैं बहुधा जिस-तिस बस-स्टॉप पर बैठा, आती-जाती महिलाओं को घूरता रहता हूँ, और रिसर्च-एक्सपीरिएन्स इकट्ठा करता रहता हूँ ।

पुस्तकालय में पहुँचकर अपना परिचय दे, डिप्टी डायरेक्टर का कमरा ढूँढ़, उनसे पत्रिकाएँ देखने की अनुमति प्राप्त करने में दो घण्टों का एक्सपीरिएन्स और जुड़ गया । जब तक मैं पत्रिकाओंवाले कमरे में पहुँचा तब तक कुल मिलाकर पाँच घण्टों का एक्सपीरिएन्स मैं प्राप्त

कर चुका था ।

एक बहुत बड़ा कमरा था । उसमें सीमेण्ट के शेल्फ ही शेल्फ बने हुए थे । उसमें ढेरों पत्रिकाओं के नये-पुराने हजारों अंक पड़े हुए थे । उन पर बहुत सारी धूल पड़ी हुई थी । बहुत दिनों से किसी ने उन्हें छुआ नहीं था ।

मैं एक-एक पत्रिका उठाकर उसे झाड़ता था । फिर उसकी सूची देखकर उसे वापस उसकी जगह पर रख देता था । एक शेल्फ झाड़ते-झाड़ते मुझे तीन घण्टों का एक्सपीरिएन्स और मिल चुका था ।

कुछ देर बाद एक व्यक्ति आकर मेरे सामने खड़ा हो गया । थोड़ी देर मुझे देखता रहा, फिर बोला, “क्या कर रहे हो ?”

“रिसर्च कर रहा हूँ ।” मैंने कहा ।

“जैसी रिसर्च तुम कर रहे हो, वैसी तो मैं पाँच वर्षों से कर रहा हूँ ।” वहवो ला ।

मैं उस रिसर्च स्कालर के सामने नतमस्तक हो गया । पूछा, “आप कौन हैं ?”

“पुस्तकालय का सेवक हूँ ।” वह बोला, “पुस्तकों की धूल झाड़ने का काम करता हूँ । पर जितनी सफाई से तुम झाड़ते हो, उतनी सफाई से मैं नहीं झाड़ सकता ।”

“यहाँ और लोग भी यही काम करते हैं क्या ?” मैंने पूछा ।

“सभी यही करते हैं ।” उसने बताया ।

मैं अपने-आपको कुछ ऊँचा आदमी समझ रहा था । मैंने पुस्तकालय के सेवकों को देखा तो मेरा अहंकार चूर हो गया । वहाँ लोग तीस-तीस वर्षों से रिसर्च-एक्सपीरिएन्स प्राप्त कर रहे थे और उनकी कोई पूछ नहीं थी । मेरे उस मित्र ने दो वर्षों के रिसर्च-एक्सपीरिएन्स से कालेज में नौकरी पा ली थी । कहीं ये लोग आवेदन-पत्र भेज दें तो अपने एक्सपीरिएन्स के बल पर रीडर से कम नियुक्त नहीं होंगे । पर मैंने उन्हें यह बात बतायी नहीं ।

मैं बड़ी हीन भावना में फँस गया । इस स्थान पर मेरा एक्सपीरिएन्स सब से कम था । मैं उन लोगों की गुरुता से दब-सा गया था ।

जब दिन भर रिसर्च करके चलने लगा तो मैंने कुल मिलाकर ग्यारह घण्टों का एक्सपिरिएन्स इकट्ठा कर लिया था। इस सारे समय में मैंने एक पत्रिका में से पौने दो पृष्ठ पढ़े थे और तीन पंक्तियाँ अपनी फाइल में उतार ली थीं। अपनी थीसिस में कहीं उद्धृत करने के लिए।

मैं एक और बात से प्रसन्न था। ग्यारह घण्टों का किसी को पता ही नहीं चलेगा। विश्वविद्यालयवाले इसे मेरा एक दिन का एक्सपिरिएन्स मानेंगे और एक दिन में चौबीस घण्टे होते हैं। तेरह घण्टे धाँधली में ही पा लिए।

मेरे चलने से पहले पुस्तकालय के डिप्टी डायरेक्टर भी कहीं से घूमते-घामते उस कमरे में आ गये। वे अपने उस घूमने-घामने को राऊंड लेना कहते हैं और उसे ही अपना काम मानते हैं। यानी उन्हें पुस्तकालय में इधर से उधर घूमने का ही वेतन मिलता है।

उन्होंने मुझे देखा। मुस्कराये और बोले, “आप अपने साथ कुछ और रिसर्च स्कालर नहीं ला सकते? ऐसे तो आपको सारी शेल्फें भाड़ते हुए महीना लग जायेगा, तीन-चार और आ जायें तो सप्ताह भर में ही काम हो जायेगा, पुस्तकालय के नौकर बहुत नालायक हैं।”

मैं बोलना चाहा, मेरी जीभ लड़खड़ा गयी। मैं उन्हें बताना चाहता था कि यहाँ के नौकरों का रिसर्च-एक्सपिरिएन्स सुन-सुनकर मैं हीन भावना में फँस गया हूँ और अपने भविष्य से काफी निराश-सा हो गया हूँ। मैं जिस किसी से कहूँगा, वह यहाँ नहीं आयेगा।

ग : एक्सपीरिएन्स बाँटनेवाली अलमारी

उर्फ मन्दिर गुणवन्ती देवी का

मैं अपनी हीन-भावना से पीड़ित, मुँह लटकाए हुए, अपने गाइड के पास आया।

उन्होंने पूछा, “क्या बात है? तुम्हारा चेहरा रिजेक्टेड थीसिस के समान कांतिहीन क्यों है?”

मैंने उन्हें बताया कि मैं हीन-भावना से पीड़ित हूँ।

“पान खाया करो।” वे बोले, “पान खानेवाला व्यक्ति कभी हीन-

भावना से पीड़ित नहीं होता । भरे पेटवाला आदमी सदा स्वयं को दूसरों से ऊँचा समझता है । पान खानेवाला सदा ही 'खा' रहा होता है, इसलिए अच्छा खाया-पिया, भरे पेट का आदमी भी उसे अपने सामने भूखा लगता है । इसलिए वह हीन-भावना से पीड़ित नहीं होता ।”

“पर मुझे तो रिसर्च-एक्सपिरिएन्स चाहिए ।” मैं वैसे ही रोते हुए बोला ।

“रिसर्च-एक्सपिरिएन्स जितना चाहोगे मिलेगा ।” वे बोले, “मैं भी सोच रहा था तुम्हारा थीसिस जल्दी पूरा हो जायेगा । उसे मैं पाँच सालों तक सँभालकर अपनी गोदरेज की अलमारी में रख दूँगा । उससे तुम्हें पाँच साल का रिसर्च-एक्सपिरिएन्स मिलेगा और मुझे रिसर्च गाइड करने का एक्सपिरिएन्स । दोनों के लाभ की बात है ।”

मैंने गोदरेज की उस अलमारी की ओर बड़ी धार्मिक भावना से देखा । मैंने उसके सामने घुटने टेककर हाथ जोड़ दिये ।

मेरे गाइड मेरी श्रद्धा को जान गये । बोले, “यह अलमारी बड़ी गुणवंती है । इसने लोगों को पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष का रिसर्च-एक्सपिरिएन्स दिया है । इससे निकलकर लोग सीधे प्रोफेसर बने हैं । मैंने इसका नाम गुणवंती रखा है ।”

मैंने गुणवंती देवी को साष्टांग प्रणाम किया । मुझे वे सरस्वती का ही अवतार लग रही थीं ।



बात

भाई साहब मर चुके थे, मैं जानता था। नहीं मरे तो मरनेवाले हैं, मर जायेंगे।

पर अभी डॉक्टर लोग कुछ भाग-दौड़ करेंगे। नर्सों इधर-उधर से चीजें घसीटकर जमा करेंगी। ऑक्सीजन लगाने का प्रयत्न होगा, गुलूकोस लगाया जायेगा, खून की बोतलों का प्रदर्शन होगा, और वातावरण में एक प्रकार की एमरजेंसी पैदा की जाएगी। सारा वातावरण बहुत गम्भीर होगा, गम्भीरता से सारे काम किये जायेंगे। फिर डॉक्टर लोग अपने चेहरे पर निराशा का भाव लायेंगे। एक-दूसरे की ओर देखेंगे। नर्सों की ओर देखकर बहुत धीरे से कुछ बुदबुदायेंगे, जो कोई सुन नहीं पाएगा। वह सुनाने के लिये कहा ही नहीं जायेगा।

फिर वे लोग भाई साहब के हाथों-पैरों को बहुत सम्मान से सजा-सरियाकर पलंग पर रख देंगे। फिर नर्सों और जमादारों में होड़ लग जायेगी कि उस शरीर को सफेद, धोबी के धुले कपड़े में लपेटकर पलंग पर से हटा दिया जाये, ताकि उस पलंग पर मरने के लिये, बारी में लगा हुआ दूसरा मरीज लाया जा सके।

तब कोई डॉक्टर मुंह बनाकर कहेगा, "सॉरी ! बी कुड नौट सेव हिम।" और लाइफव्वाय साबुन से हाथ धोने के लिये बेसिन की ओर चला जायेगा, जैसे आदमी को नहीं, मरे चूहे को छूकर आया हो और

उसके हाथ में अभी भी वह छुवन लगी हो, लिजलिजी...

मैं सोचता हूँ कि मैं यदि डॉक्टर होता तो इतना निराशावादी कभी नहीं होता। आकर अपनी असफलता की सूचना देने की क्या तुक—“वी कुड नाँट सेव हिम।” नान सेन्स—मैं डॉक्टर होता तो हँसकर कहता, “वी हैव हैल्थ हिम टु डाई।”

...और फिर मेरा मन भाषा समस्या में जा फँसा। साले अँग्रेजी में क्यों कहते हैं? आकर सीधे-सीधे हिन्दी, पंजाबी में बता दें कि “अगला मर गया है। ले जाकर कहीं फूँक दो।” व्यर्थ ही अँग्रेजी में कह जायेंगे—“वी कुड नाँट सेव हिम।” ताकि मरनेवाले के रिश्तेदार यह समझकर जोर-जोर से रोने लगें कि डॉक्टर कह गया है, “आदमी बच तो जायेगा, पर पैसे और लगेंगे।”

वैसे तो वे लोग घर से रोने की तैयारी करके ही आये होते हैं, ऊपर से पैसे के खर्च का भ्रम फैलाकर डॉक्टर लोग और रुला जाते हैं...

पर अभी भाई साहब के विषय में उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं था। मैं अपने दो मित्रों की सहायता से भाई साहब को टैक्सी में डालकर अस्पताल लाया था। मित्र लोगों ने ही नर्सों के साथ मिलकर उनको वार्ड में पहुँचाया था और मैं नीचे, रिसेप्शन के काउंटर पर बैठा फार्म पर फार्म भरता गया था। बहुत सारे फार्म भरे थे मैंने: एडमिशन के लिए, एक्सरे के लिए, ऑपरेशन के लिये। पर प्रत्येक फार्म में हस्ताक्षर से ऊपरवाली पंक्ति थी कि इस काम का सारा खर्च मैं दूँगा। विल का भुगतान मेरे जिम्मे होगा। और हस्ताक्षर करते-करते मैं हर बार डरा था कि इस काम से पहले यदि भाई साहब नहीं मरे तो अस्पतालवाले वह कर डालेंगे और उसके मुझे पैसे देने पड़ेंगे।

मेरे दोनों मित्र एक कोने में चुपचाप खड़े थे। मैं जानता था कि उनके सामने समस्या क्या थी? भाई साहब को यहाँ तक लाना उनके लिये कठिन नहीं था। उनके शरीर को यहाँ से घर और घर से श्मशान तक भी वे बड़ी सरलता से ले जा सकते थे। पर भाई साहब के मरने के बाद मुझे सांत्वना दे सकना उनके लिये सम्भव नहीं था। मैं जानता था

भी कि रोना सूरत बनाकर उन्होंने मुझे सांत्वना देने का प्रयत्न किया ता
'वी उन्हें हँसी आ जायेगी और यदि कहीं वे निभा गये तो मैं ही हंस पड़ूंगा ।
ता, मैंने सोच लिया था कि यदि उन्होंने मुझे सांत्वना देने का प्रयत्न किया
तो मैं शुरू में ही टोक दूंगा—“छोड़ो यार...”

में मैंने सिगरेट सुलगा लिया । एक बार डॉक्टरों ने उनके मरने की
ला सूचना दे दी तो फिर सिगरेट पीने का भी समय नहीं मिलेगा । मैं सारे
— देवी-देवताओं को मना रहा था कि भाई साहब के मरने की सूचना मेरे
कर सिगरेट के समाप्त होने के बाद आये, नहीं तो फेंकना पड़ जायेगा । मैंने
गा, गोल्डफ्लैक पीना अभी हाल में ही शुरू किया था...

पर डॉक्टरों ने मुझ तक सूचना पहुँचाने में दो सिगरेट पीने का समय
ते लगा दिया । न चाहते हुए भी मुझे दूसरा गोल्डफ्लैक पीना पड़ा, क्योंकि
ही वहाँ और कोई काम किया नहीं जा सकता था । रिसेप्शनिस्ट की मेज
कर के कोने में पड़ी अमरीकन पत्रिकाओं को उलटने-पलटने का यह समय
गार्ड नहीं था । कोई समझता कि मुझे अपने भाई की बीमारी की कोई
चिन्ता नहीं है । सिगरेट पीते हुये मैं काफी चिन्तित लग रहा था—मैं
जानता था ।

पर गोल्डफ्लैक सिगरेट थे । मैं दिन में दो पैकेट एफ़ोर्ड नहीं कर
सकता था । पहले के समान चारमीनार पीता होता तो अब तक कितने
ए, ही सिगरेट आधे-आधे पीकर ऐश-ट्रे में कुचल चुका होता ।
से

का यदि मैं कोई बड़ा आदमी होता न, संत टाईप का, तो सिगरेट न
रा पीकर अमरीकन पत्रिकायें ही पलटता । दूसरे दिन समाचार-पत्रों में लोग
ले मेरे विषय में पढ़ते कि मेरे एकमात्र सगे भाई मृत्यु शय्या पर पड़े थे
कि और मैं तनिक भी विचलित हुए बिना पत्रिका पढ़ रहा था । डॉक्टर
के ने मुझे जब भाई के मरने की सूचना दी तो मैंने क्षण भर डॉक्टर को
न देखा और फिर चुपचाप पत्रिका पढ़ने लगा । मेरी एकाग्रचित्तता
के में कोई अन्तर नहीं आया । वह रचना, जो मैं पढ़ रहा था, समाप्त करने
न पर मैं उठा । जेब से केलिको मिल्स का सफेद धुला हुआ, दो रुपये दस
के पैसे का रुमाल निकालकर मैंने अपना चेहरा पोछा और घर चला
था आया । घर आकर मैं एक कमरे में बन्द हो गया और खूब रोया...पर

मैं बड़ा आदमी नहीं हूँ। यदि मैंने भैया के मरने की सूचना पाकर भी पत्रिका नहीं छोड़ी, तो लोग कहेंगे, “साले में कोई सेण्टिमेंट ही नहीं है...।”

काफी प्रतीक्षा के बाद, जब मैं डर रहा था कि कहीं तीसरा गोल्ड प्लैक न जलाना पड़े, डॉक्टर ने मुझे सूचना दी कि भैया सचमुच मर चुके हैं।

मेरे मुँह से सहसा अचकचा कर निकला, “अच्छा !”

पर फिर मैंने रुमाल निकालकर अपनी आँखों पर रख लिया। डॉक्टर ने मेरा कंधा थपथपाया और वापस चला गया।

डॉक्टर के साथ आई दोनों नर्सें खड़ी मेरी ओर देखती रहीं कि यदि मैं चीख मारकर रोऊँ या धाड़ मारूँ तो वे मुझे बता सकें कि वह अस्पताल है और वहाँ शोर किसी हालत में भी नहीं होना चाहिए, चाहे व्यक्ति स्वयं ही क्यों न मर जाये।

पर मेरा चीख मारने का कोई इरादा नहीं था। असल में घर से चलते हुए मुझे इतना समय ही नहीं मिला था कि मैं दो-एक चीखें मारकर अभ्यास कर लेता। मुझे सन्देह नहीं था कि यदि मैंने यहाँ चीख मारने का प्रयत्न किया तो मेरे मुँह से कोई ऐसी विचित्र आवाज निकल जायेगी, जिसे रिसेप्शनिस्ट अपने लिए कंप्लिमेंट समझ बैठेगी।

नर्सों ने जब समझ लिया कि मैं चीख मारने का कोई इरादा नहीं रखता तो बेचारी बड़ी ही निराश होकर लौट गईं।

मेरे दोनों मित्र मेरे पास आ गए। उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं। बस चुपचाप कभी मेरा हाथ और कभी मेरा कंधा धीरे-धीरे दबाते रहे, सांत्वना देने के अन्दाज में। मेरा सोचा हुआ वाक्य-खण्ड ‘छोड़ो यार...’ मेरे तालू से चिपककर रह गया। अच्छा हुआ मैंने जल्दबाजी नहीं की। नहीं तो मैं ‘छोड़ो यार...’ कह जाता और वे लोग सांत्वना के वे वाक्य कहते ही नहीं, जिनके उत्तर में मुझे यह कहना था।

वैसे मैं सोचता हूँ तो लगता है कि वह दृश्य बड़ा ही भव्य रहा होगा। अस्पताल में मेन गेट के भीतर, रिसेप्शनिस्ट की मेज के साथ, उस बड़े से हॉल जैसे बरामदे में, अनेक खम्बों में से एक के साथ टिका मैं

रुमाल से आँखें पोंछ रहा हूँ। मेरे दोनों मित्र मुहरम्मी सूरतें बनाए मेरा कंधा और मेरा हाथ दबा रहे हैं—कैसा लगता होगा वह दृश्य, किसी अंग्रेजी पिकचर जैसा।

भव्यता तो थोड़ी देर के लिये होती है। मैं जानता था कि यह ज्यादा देर तक नहीं चलेगा। मैंने गला खखारा, जैसे बोलने में तकलीफ हो रही हो और बोला, “तुम लोग शरीर लेने का प्रबन्ध करो, मैं घर चलकर भाभी को सूचना दूँ।”

“अच्छा!” उन दोनों ने कहा और मुझसे हटकर खड़े हो गए।

बाहर निकलकर सहसा मुझे लगा कि मुझ पर बहुत भारी उत्तरदायित्व आ पड़ा है। भाभी को यह सूचना कैसे दी जा सकती है। कैसे कहूँगा भाभी से कि भैया मर गये। वह तो मेरा मुँह नोच लेगी। सोचा, जाकर चुपचाप खड़ा हो जाऊँगा और रोने लगूँगा। वह मुझे रोता देखकर घबरायेगी, चीखेगी, चिल्लायेगी, तरह-तरह के प्रश्न करेगी, पर मैं कोई उत्तर नहीं दूँगा। गाँव की है तो क्या हुआ, अन्त में तो समझ ही जायेगी कि भैया मर गये हैं।

पर जब वह रोयेगी तो मैं उसे सांत्वना कैसे दूँगा। भाभी जब रोती है तो बड़ी बेढव लगती है। सेक्स अपील तो उसमें वैसे ही नहीं है, रोती हुई तो और भी फूहड़ लगती है। यदि मुझे उसे भींचकर चुप करना पड़ा तो बड़ी कोफ्त होगी...

बस स्टॉप पर सदा के समान भीड़ थी।

मैं सहसा गम्भीर हो गया। मेरे एकमात्र भाई की मृत्यु हुई थी। कितनी बड़ी ट्रेजडी। यदि मैं विदेश में होता तो भाई की मृत्यु के कारण मेरी बाँह पर शोक सूचक काले रंग की पट्टी बाँधी हुई होती। लोग मुझे देखते ही सहानुभूति और सम्मान में पीछे हट जाते। तब मैं कितनी सुविधा से बस में चढ़ सकता था। यदि वैसा करना यहाँ सम्भव होता तो मैं रोज ही अपनी बाँह पर काले कपड़े की पट्टी बाँधे रहता। बस में चढ़ने की कितनी सुविधा रहती। पर इस देश में सभी तो झूठे हैं, सब के सब ही काली पट्टियाँ बाँधे रहते। कौन किसके सम्मान में रास्ता छोड़ता?

बस आयी तो भीड़ ने हल्ला बोल दिया। मैंने भी भाई साहब की

मृत्यु की भावना को तोचकर अपने चेहरे से परे फेंक दिया। उसको लिये रहता तो बस में कभी न चढ़ पाता।

मैं बस में चढ़ नहीं पाया, बस पायदान पर पैर टिकाकर खिड़की के सीखचों से लटक भर पाया। मुझे लगता था कि बस के अगले हिस्से में ड्राइवर के पास कुछ जगह थी। पर बस के गेट पर दो लड़कियाँ फँसी खड़ी थीं और जनता उनको छोड़ आगे जाने को तैयार नहीं थी।

हर स्टॉप पर लड़कियों के आस-पास भीड़ बढ़ती जा रही थी और लोग उन पर गिरे जा रहे थे। मुझे लगा कि मैं खाहमखाह ही खिड़की के सीखचों के साथ लटका हुआ हूँ। ऐसे लटके हुये को कोई लड़की देख भी नहीं रही। फिर क्यों जान को खतरे में डाला जाय। मुझे भी गेट पर खड़ी दो लड़कियों के इर्द-गिर्द की भीड़ में मिल जाना चाहिये। धक्का मारने के दो-एक अवसर मेरे हिस्से भी तो आ ही जायेंगे।

पर जब तक मैं उनके पास पहुँचा, वे बस से उतर गईं। मैं एक भी धक्का नहीं मार सका। मेरे मन में निराशा भर आयी। अब फ्रस्ट्रेशन न हो तो क्या हो। यह भी साला कोई देश है, जहाँ किसी लड़की को धक्का मारने को मन ललचाता रहे, और आपको अवसर न मिले। लानत है ऐसे देश पर। तभी तो यह देश पिछड़ा हुआ है। फ्रस्ट्रेशन के ऐसे ही कई अवसरों पर मैंने वैस्ट चले जाने की बात सोची है...।

ड्राइवर ने जोर की ब्रेक लगाई और कुछ अपने जोर और कुछ ब्रेक के झटके के जोर में बस से उतर आया। मैं बस के साथ-साथ दौड़ता हुआ तीन-चार कदम चला गया था। रुककर जेब में हाथ डाल, टिकट लेने के लिये मुड़ा तो कन्डक्टर ने जल्दी से डबल वेल बजा दी। बस झपाटे से आगे बढ़ गई...।

मैंने आज फिर पन्द्रह पैसे बचा लिये थे। मेरा बीसियों बार का आजमाया हुआ नुस्खा है कि इस प्रकार पैसे बचाए जा सकते हैं। कोई ढीठ कन्डक्टर मिल जाए, बस से उतर आये और पैसे माँगे तो दस पैसे का टिकट कटा लिया। पाँच पैसे वैसे भी बच जाते हैं। पर आज तो पन्द्रह ही बच गये।

मैं पैसे के माध्यम में कम ही सोचता हूँ। सिगरेटों के माध्यम में

को अधिक सोचता हूँ । पन्द्रह पैसे बचाना बड़ी बात नहीं लगती, पर एक गोल्डफ्लैक खरीद पाना बड़ी बात है । खुशी की बात है । और जब सरकार के पैसे से गोल्डफ्लैक सिगरेट पीया जाये तो उसका मजा भी दुगना हो जाता है ।

मैं अपनी जेब में हाथ डाले, पन्द्रह पैसे के सिक्के खनखनाता हुआ तेजी से घर की ओर चलने लगा । भाभी को बताऊँगा कि आज फिर मैंने पन्द्रह पैसे बचाये हैं तो वह कितनी प्रसन्न होगी । है न खुशी की बात ।



रिश्तों से बढ़कर

वह मेरे सामने बैठा हुआ मुझसे कह रहा है, “आप मेरे लिए, पिता से भी बढ़कर हैं।”

वह इंकमटैक्स के एक चक्कर में फँस गया है और इंकमटैक्स अफसर मेरा मित्र है। इसलिए वह मुझे बता रहा है कि मैं उसके लिए उसके सगे बाप से भी बढ़कर हूँ। उसके अपने बाप के विषय में जो मौलिक विचार हैं, उनसे मैं भली-भाँति परिचित हूँ—इसलिए उसके साथ इस प्रकार के रिश्ते की चर्चा से प्रसन्न नहीं हूँ। अपने बाप के सन्दर्भ में वह मवाद से लबालब भरा हुआ, अत्यन्त पका हुआ फोड़ा है। किसी के जरा-से छूते ही बहने लगता है, “अजी हमारे बाप की क्या बात है। जीवन-भर जो कमाया, वह उड़ाया। साले ने यह भी ध्यान में नहीं रखा कि ये जो पिल्ले मैंने पैदाकर सड़कों पर फेंक दिये हैं, इनके लिये भी मेरा कोई दायित्व है; और अब वह बूढ़ा हो गया है, बीमार रहता है इसलिए चाहता है कि सौ नहीं तो पचास, रुपया महीना तो उसे अवश्य ही भेजूं।”

अब वह मेरे सामने बैठा, ! मुझे अपने बाप से बढ़कर मान रहा है। बाप से बढ़कर मानने का अर्थ है कि वह मुझे ठीक-ठीक अपना बाप नहीं मान रहा। वह जानता है कि प्रत्येक बाप समय आने पर बूढ़ा हो जाता है; और बूढ़े लोगों में एक निहायत बुरी आदत यह होती है कि वे बहुधा बीमार रहते हैं और चाहते हैं कि उनका इलाज उनके बेटे करायें।

वह मेरे बुढ़ापे और बीमारी के इलाज का बोझ अपने सिर नहीं लेना चाहता, इसलिये मुझे बाप नहीं मान रहा, बाप से बढ़कर मान रहा है।

बहुत पहले मेरे साथ एक और ऐसी ही घटना घटी थी। तब मैं उम्र में काफी छोटा था, इसलिए कोई मुझे बाप से बढ़कर नहीं मान सकता था, पर एक साहब ने मुझे बेटे से बढ़कर माना था। वे मेरे पड़ोस में रहा करते थे। वेचारे बूढ़े आदमी थे और अधिक भाग-दौड़ नहीं कर सकते थे। घर में कोई मिलने आ जाता तो बाजार से नीबू या कोका-कोला मंगाने के लिये मेरे पास दौड़े आते। मैं अपने घर आनेवाले को तो टाल जाता था, पर उनके घर आनेवालों के लिये भाग-भागकर बाजार से चीजें ला देता था।

हर बार वे अपने बूढ़े-निरीह चेहरे पर ढेरों कृतज्ञता उँडेलते और बड़ी गद्गद् आवाज में कहते, “आप मेरे लिये बेटे से बढ़कर हैं।”

मैं बहुधा उनके विषय में सोचा करता था—आखिर यह व्यक्ति मुझे अपना बेटा क्यों नहीं मानता—बेटे से बढ़कर क्यों मानता है?

उनके घर उनकी बेटी की शादी थी। मैं बेटे से बढ़कर था, इस लिये तंबू लगवाता रहा, प्लेटें धुलवाता रहा, खाना पकवाता रहा। पर शादी में उनका बेटा भी दूसरे शहर से आया था। बेटा बाहर से आया था, इसलिये वे सज्जन और उनका सारा परिवार बेटे की आवभगत में लग गया; और मैं चूँकि बेटे से बढ़कर था, इसलिये बैरों से सिर मारता रहा। बेटा आया, उसने सरसरी नजर से कुछ देखा और अपनी अप्रसन्नता प्रकट कर दी। मिनटों में उसने मेरी सारी व्यवस्था में हेर-फेर कर दिया। उसकी प्रचारित आज्ञाओं का धड़ाधड़ पालन होने लगा; और चूँकि मैं बेटे से बढ़कर था, इसलिये मेरी आपत्तियों की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

उनके बेटे ने वहन को उपहार में दो सौ रुपयों की साड़ी दी, मैं बेटे से बढ़कर था, इसलिये पीछे कैसे रहता? दोस्तों से उधार लेकर तीन सौ की साड़ी ले आया। शादी समाप्त हो गयी तो वह बेटी की शादी की खुशी में अपने बाप से पाँच सौ रुपयों का गर्म सूट ऐंठकर ले गया; और

मुझसे बड़ी कृतज्ञतापूर्वक हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा, “आपके बिना शादी का सारा प्रबन्ध ही सम्भव नहीं था। मैं आपका आभार कैसे प्रकट करूँ, आप मेरे लिये बेटे से भी बढ़कर हैं।”

वाद में मैंने सुना कि लड़का अपने माँ-बाप से बहुत भगड़ा था कि उन्होंने उससे पूछे बिना अपनी जीवन भर की जमा पूँजी उसकी बहन के विवाह पर क्यों खर्च कर दी। अब वे लोग उसे क्या देंगे? क्या वे चाहते हैं कि वह कंगाल का कंगाल रह जाये। भगड़ा कुछ ज्यादा ही बढ़ गया था और लड़का आपे से बाहर हो गया था। उसने माँ-बाप से रिश्ता तोड़ने तक की धमकी दी थी। तब उन सज्जन ने उसे शान्त करने के लिए, शहर के पुराने हिस्से में बना अपना मकान उसके नाम लिख दिया था और कहा था कि वह उसे किरायेदारों से खाली कराकर बेच डाले। बेटे का मन तो रखना ही था—जायदाद क्या बेटे से बढ़कर होती है?

अगले ही महीने मुझे अपनी बीमा पालिसी की अर्द्धवार्षिक किस्त देनी थी—पाँच सौ रुपये। सौ रुपये तो मेरे पास थे, पर शेष चार सौ रुपये? बहुत सोच-विचारकर मैंने उनका दरवाजा खटखटाया, आखिर मैं उनके लिये बेटे से बढ़कर था। मेरी बात सुनकर वे बड़ी मासूमियत से मुस्कराये, “क्या बतायें कोहली साहब! मेरे पास तो पचास रुपये भी नहीं हैं। यूँ समझिये बेटा की शादी ने कमर ही तोड़ दी है हमारी।”

मैं चुपचाप निष्कर्ष निकालता हुआ लौट आया था।

कुछ-कुछ निष्कर्षों पर मैं पहुँच भी गया हूँ। समझने लगा हूँ ‘बेटे से बढ़कर’ का तात्पर्य होता है, बेटे के अधिकारों से वंचित वह व्यक्ति, जिसे बेटे के सारे कर्तव्यों को निभाना होगा। ‘बढ़कर’ एक अर्थशास्त्रीय फार्मूला है, जिस रिश्ते के साथ यह जोड़ दिया जाता है, उसे उस रिश्ते के समस्त आर्थिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। जब मैं पहली बार अपनी पत्नी को अपनी माँ से मिलाने ले गया तो मेरी माँ ने मेरी पत्नी को तीन बार चूमा था और अपनी छाती में भींचकर अपनी ममता उँडेली थी, “बहू! तू मुझे अपनी बेटा से बढ़कर है।”

मैं तभी समझ गया था कि माँ ने मेरी पत्नी को समझा दिया है कि उसे अपनी सास की सेवा, बेटा के समान निश्छलता से करनी है, किन्तु:

उसे बेटी के आर्थिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। तब से माँ को जब कोई तकलीफ हुई, उन्हें मेरी पत्नी की याद आयी और जब-जब उनके हाथ में कोई अच्छी साड़ी आयी, कोई गहना आया—वह उन्होंने अपनी बेटी को दे दिया। बेटी से बढ़कर, अपनी बहू को उन्होंने उसके गुणों की प्रशंसा से मालामाल कर रखा है।

मेरे पड़ोसियों का नौकर अत्यन्त सौभाग्यशाली है। ऐसे अच्छे स्वामी बहुत कम नौकरों को ही मिल पाते हैं। वे उसे अपने बच्चे से बढ़कर मानते हैं। वह चौदह वर्षों का लड़का सुबह मुँह-अंधेरे कड़ाके की सर्दी में एक कमीज और एक फटी हुई बिना बाँहों की स्वेटर में ठिठुरता हुआ दूध लेने जाता है। दूध लाकर गर्म करता है और सफाई झाड़-पोछ में लग जाता है। जब जरा सूर्य निकल आता है तो चाय बनाकर रजाइयों में दुबके सारे परिवार को पिलाता है। फिर नाश्ता बनाता है। कपड़े धोता है। बर्तन साफ करता है। साहब को नहाने के लिये गर्म पानी देता है; और साहब बाथरूम से फुफकारते हुए निकलते हैं, “किसी के साथ बहुत अच्छे होना भी ठीक नहीं। हम इसे अपने बच्चे से बढ़कर मानते हैं और यह है कि चाहता है कि हमें निमोनिया हो जाये। अबे सूअर के बच्चे ! इतने ठंडे पानी से कौन नहाता है सदियों में ? हमें मारना चाहता है तू ?”

इधर सुना है कि यूरोप-अमरीका में लोगों में बहुत-सारी आध्यात्मिक भावना उमड़ पड़ी है। अपनी यांत्रिक भौतिकता से तंग आ गये हैं वेचारे। वे सब लोग भारत की ओर भागते चले आ रहे हैं। दिल्ली की सड़कों पर सैकड़ों हिप्पी लड़के-लड़कियाँ गलबहियाँ डाले मस्त घूमते-फिरते नजर आते हैं। मैं बस में बैठा हुआ, कनाट प्लेस से गुजर रहा था कि देखा गोरे हिप्पियों का एक दल कुछ भारतीय काले, नंगे, भिखमंगे-से बच्चों को अपने साथ चिपकाये पार्क में से गुजर रहा था। वे बच्चे काले भारतीय न होते तो मैं उन्हें भी हिप्पी ही मान लेता—वे भी उन्हीं हिप्पियों के समान नंगे थे, उन्हीं के समान उनकी जटायें बड़ी हुई थीं, और उन्हीं के समान वे पिछले छः महीनों से नहाये-धोये नहीं थे।

भारत के अध्यात्म में डूबा एक हिप्पी मुझसे भी टकरा गया। मैंने

अपने रूखे अंदाज में उससे पूछ लिया, “विदेशी होकर तुम हमारे देश में क्या करने आये हो ?” वह कुछ नाराज-सा होकर बोला था, “हमें विदेशी मत कहो । भारत अध्यात्म का घर है । आध्यात्मिक-चिन्तन करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह अपने देश के समान है । हमारे लिये भारत, अपने देश से बढ़कर है ।”

और मैं उसी दिन से इन हिप्पियों से डरा बैठा हूँ । ये भारत को अपने देश से बढ़कर मान रहे हैं । ये भारतवालों को गाँजा-चरस, अफीम-हशीश खिला रहे हैं । ये यहाँ के भेद बाहर भेज रहे हैं । ये यहाँ स्मगलिंग का धन्धा कर रहे हैं; पर जिस दिन भारत ने इनके सामने हाथ फैलाया, उसी दिन वे कह देंगे, “हम तुम्हें क्या दें, तुम हमारे लिये अपने देश से बढ़कर हो ।”

कुछ अवंगालियों ने बंगला-देश को अपने देश से बढ़कर माना था, बंगालियों को उन्होंने अपने भाइयों से बढ़कर माना था; और आज भी उन लोगों की करतूतों को याद कर-करके वह देश विलख रहा है । रोज सामूहिक कब्रें खोद-खोदकर निकाली जा रही हैं, खोपड़ियों, हड्डियों और कंकालों के टनों-टन तुल रहे हैं; और साधारण बंगला-देशी अपने परिवार के खोये हुए सदस्यों का पता उनसे पूछ रहा है, जिन्होंने उस देश को कभी अपने देश से बढ़कर माना था ।

कुछ पड़ोसी देशों को हमारे कुछ नागरिक अपने देश के नागरिकों से बढ़कर प्यारे लग रहे हैं और मेरा मन इस बात से सहमने लगा है । बात यह है कि वे नागरिक सेनापतियों से बढ़कर सेनापति हो गये हैं । उनको लगता है कि देश की भूमि के इंच-इंच के लिये मरने का नारा सैनिक दृष्टि से अत्यन्त मूर्खतापूर्ण है । भारत को लक्षावध में अपनी सेना रखकर अनावश्यक खर्च करने की क्या आवश्यकता है ? वह धरती इस योग्य नहीं है, जितना उस पर खर्च हो रहा है । उतनी ऊँची जगह को जीतने कौन आएगा ?

मैंने उनसे पूछ लिया था, “तिब्बत को जीतने कोई क्यों आ गया था ?”

“इतिहास बताता है कि तिब्बत पहले चीन का ही भाग था । इस

लिये उस पर चीन का पूरा अधिकार बनता है ।” उन्होंने मुझे बताया था ।

“वैसे तो इतिहास यह भी बताता है कि पाकिस्तान नामक देश पहले भारत का अंग था । कभी अफगानिस्तान ही नहीं, लंका, बर्मा तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के देश भी भारत के अंग थे । तो इसका क्या तात्पर्य है कि भारत उनको जीत ले ?”

“क्यों जीत ले ?” वे नाराज हो गये, “तुम साले फासिस्ट हो । हमेशा लड़ाई की बात करोगे । देशभक्ति का यह अर्थ कहाँ है कि हम पड़ोसियों से लड़ते रहें । तुम अपने को बहुत देशभक्त समझते हो । हम देशभक्त से भी बढ़कर हैं ।”

अब मैं उन्हें क्या बताता, मैं भी उन्हें देशभक्त से बढ़कर ही समझ रहा था ।

●●

आत्महत्या

उसने अपनी प्रेमिका को परख लिया था अच्छी तरह ! वह सही अर्थों में प्रेमिका ही निकली थी । इस शब्द से न एक सेंटीमीटर इधर, न उधर । प्रेमिका ने साफ शब्दों में कह दिया था कि वह उसकी प्रेमिका है और प्रेमिका ही रहेगी । उसकी पत्नी बनकर वह अपना सम्मान घटाना नहीं चाहती ।

वह बहुत भावुक हो उठा था । बहुत रोया-धोया था । डेढ़ रुपया खर्च कर, अपने गर्म सूट की कराई गई प्रेस पर पानी फिर जाने का रिस्क उठाकर भी वह रोया । और सारा समाजशास्त्र चिथड़े-चिथड़ेकर उसने सिद्ध कर दिया कि पत्नी का सम्मान प्रेमिका से कभी भी कम नहीं रहा था, और कभी कम नहीं होगा ।

उसकी प्रेमिका बहुत जोर से हँस कर बोली—“हाऊ प्रिमिटिव ! सब लोग अपनी प्रेमिकाओं को साफटी आइसक्रीम खिलाते हैं, कभी किसी ने पत्नी को भी साफटी खिलाई है !”

उसका जी चाहा कि वह इसी बात पर शहीद हो जाये । पाप-म्यूजिक की चीखती हुई आवाज में बोला—“यदि किसी की पत्नी भी प्रेमिका के समान अपनी आवश्यकताओं के लिए अपने बाप के पैसे खर्च करे तो पत्येक पति अपनी पत्नी को ही नहीं, घर के कुत्ते-बिल्लियों को भी रोटी की जगह साफटी ही खिलायेगा ।”

और फिर वैसे भी रात को नींद काफी आती थी। वह आत्महत्या के पीछे अपनी नींद खराब नहीं करेगा। और यदि रात टल गयी तो कल तक तो सबको पत्र मिल जायेंगे और पत्र मिलने के बाद आत्महत्या की तो क्या की !

वह धूप में ही चिट्ठियाँ पोस्ट करने के लिए चल पड़ा।

होस्टल का वरामदा पारकर, उसे लगा कि इस धूप में वह बाहर जा ही रहा है तो कम-से-कम बगल के कमरे से गुप्ता से उसके गागल्स ही ले लेता। अब मरने से पहले इन आँखों को कष्ट देने का क्या लाभ ! यदि वह गुप्ता के गागल्स ले लेता तो आकर उन्हें पहने-पहने ही आत्महत्या कर लेता। जब गुप्ता को पता चलता कि उसने उसके गागल्स पहनकर आत्महत्या कर ली है तो कितना डरता वह ! काश, वह उस समय डरे हुए गुप्ता को देख सकता ! पर वह जानता था कि यह सम्भव नहीं था। तब तक वह आत्महत्या कर चुका होगा।

वह चिट्ठियाँ पोस्ट करके लौटा तो आत्महत्या के लिए एकदम तैयार था। उसने सोचा, अच्छा होता यदि वह भी वाइस-चांसलर के आफिस के सामने चैक-स्टूडेंट के समान स्वयं को आग लगाकर मर सकता। तब उसकी प्रेमिका यूनिवर्सिटी कैफे में बैठी हुई देखती कि उसमें गट्स है या नहीं। पर अब क्या ? अब तो उसे मरना ही था।

उसने अपनी बाटिक-पेंटिंग्सवाली चादरें निकालीं और रोशनदान और खिड़की के शीशे को ठक दिया, ताकि कोई बाहर से छत से लटकती रस्सी न देख ले।

सहसा उसने देखा, उसकी मेज पर 'लेडी चैटर्लीज लवर' पड़ी थी। उसकी आत्महत्या के बाद डैडी कमरे में आयेंगे तो उनकी नजर जरूर उस पर पड़ेगी। उसने पुस्तक छिपा दी। बाकी कमरा भी ठीक करना जरूरी था। उसके मरने के बाद बहुत सारे लोग उसके कमरे में आने-वाले थे। उसका कमरा माडर्न और सजा-धजा लगना चाहिए। वह नहीं चाहता था कि उसके मरने के बाद लोगों की ओपिनियन उसके बारे में खराब हो। और वह यह तो जरूर चाहता था कि उसकी प्रेमिका उसके मरने के बाद अपने व्यवहार पर जरूर पछताये।

कमरा ठीक करने में वह काफी थक गया था। मरने से पहले एक सिगरेट पीना जरूरी हो गया था। सिगरेट और यदि हो सके तो एक कोल्ड-ड्रिंक। वाह ! दुनियाँ में दो ही चीजें हैं एक प्रेमिका और दूसरा कोल्ड-ड्रिंक।

वह कालेज की कैंटीन में आया। वह जाकर कोनेवाली अपनी सीट पर बैठ गया। आज वह आखिरी बार इस सीट पर बैठ रहा था। इस के बाद जब तक यह दुनिया रहेगी, वह इस सीट पर बैठने के लिए कभी नहीं लौटेगा। उसका दिल भर आया। यह कुर्सी उसे कितनी याद किया करेगी। कोई प्रेमिका बेवफा हो सकती है, पर कुर्सी कभी बेवफा नहीं हो सकती।

वैरे को उसने आर्डर दिया। और वह सिगरेट और कोल्ड-ड्रिंक पीता रहा।

उसके आसपास बहुत सारे लोग बैठे थे पर उनमें से कोई भी नहीं जानता था कि वह यहाँ से कमरे में जाकर आत्महत्या कर लेगा। कितने बुद्ध हैं ये लोग ! क्या वे लोग उसके फेस से नहीं समझ सकते कि वह एक ब्रोकन-हार्ट है। वे लोग उसके दिल का टूटा हुआ रिकार्ड नहीं सुन सकते !

कल जब उनको मालूम होगा कि वह मर गया है तब वे लोग कैसा फील करेंगे ! वॉंट दे फील स्टुपिड ? सब कहेंगे, कल हमने उसे यहाँ देखा था। और तब सब लोग उसकी तारीफ करेंगे। ब्लडी-फूल्स !

उसने कोल्ड-ड्रिंक के पैसे नहीं चुकाये। क्यों चुकाये ! वह तो अब मर ही जायेगा। कैंटीनवाला उसके नाम पर लिख लेगा। लिख-कर क्या करेगा, वह तो मर ही जायेगा !

वह उठकर कैंटीन से बाहर आया।

गुप्ता अपने गैगल्स पहने कहीं जा रहा था।

“हैलो गुप्ता ! कहाँ ?” उसने पूछा।

गुप्ता ने गैगल्स हाथ में पकड़ लिये। बोला—“क्या बताऊँ यार, शी हैज चीटेड मी।”

“कौन ?” उसने पूछा।

पर उसकी प्रेमिका नहीं मानी। बोली—“जो आदमी पैसे को इतना महत्त्व देता है, वह न अच्छा पति है न अच्छा प्रेमी।”

उसे भी लगा कि पैसे की बात घटिया बात है। उसे क्या हक था कि वह अपनी प्रेमिका से पत्नी के समान घर का बजट डिस्कस करे। उसने भूल की थी और उसे उसका दण्ड मिलना चाहिए था। वह गिड़गिड़ाकर बोला—“मुझे तुम न मिलीं तो मैं आत्महत्या कर लूंगा।”

प्रेमिका इतनी जोर से हँसी कि उसके मुँह से पाप-कार्न का दाना छिटककर उसकी आँख पर लगा। “प्रेमिकाएँ नयनों के तीर मारा करती थीं और तुम प्रेमियों की आँखें फोड़ने पर लगी हुई हो।” वह बोला।

“देसी बातें हैं,” प्रेमिका बोली—“किसी भी इंग्लिश पोयट के किसी पोयम में दिखाओ कि प्रेमिका ने नयनों के तीर मारे हो !”

“छोड़ो उन बातों को,” वह बोला—“मैंने यह कहा था कि यदि तुम मुझे न मिलीं तो मैं आत्महत्या कर लूंगा। एंड वाई गाड ! आई मीन इट।”

“बकवास मत करो !” प्रेमिका बोली—“आत्महत्या बड़ी हिम्मत का काम है। उसके लिए गट्स चाहिए। वन नीड्स नर्व्स फार इट। तुम मेमने हो मेमने ! तुम क्या करोगे ! गो होम !”

उसका दिल किसी पुराने रिकार्ड की तरह दरक गया और उसकी जीभ की सुई उसी दरक पर अटक गयी।

“मैं आत्महत्या करूँगा...मैं आत्महत्या करूँगा...मैं आत्महत्या करूँगा...” टूटा हुआ रिकार्ड गाता रहा।

होस्टल लौटकर वह सीधा अपने कमरे में चला गया ! उसने अपना सबसे सुन्दर पैड निकाला और तीन पत्र लिखे। रूपनगर थाने के इंचार्ज के नाम, अपने डैडी के नाम और अपनी प्रेमिका के नाम ! उसने तीनों में सूचना दी थी कि वह लव में डिसेप्वाइंट होकर सुसाइड कर रहा था।

प्रेमिकावाले पत्र पर उसने इम्पोर्टेंट परफ्यूम की सारी शीशी उलट दी। यह शीशी उसने अपने एक विदेशी मित्र के घर से चुरायी

थी ताकि जब वह प्रेमिका से मिलने जाये तब यह परफ्यूम लगाकर जाये । अब जब वह मर ही रहा था तो परफ्यूम रखकर क्या करना था ! उसके मरने के बाद उसका पत्र प्रेमिका को मिलेगा । वही उनकी अन्तिम भेंट होगी । तभी सारा परफ्यूम उसकी प्रेमिका के नथुनों में घुसकर उसे प्रेम में मदहोश कर देगा (यदि रास्ते में ही डाकिया परफ्यूम को अपनी जीभ से चाट न गया तो) ।

उसके होंठों पर हल्की-सी मुसकान उभरी । उसकी प्रेमिका वहाँ होती तो देखती कि यह मुसकान उसी के लिए थी । वह समझती थी कि वह आत्महत्या नहीं कर सकता । उसने अभी उसकी नर्स देखी नहीं है । वस, अभी इन चिट्ठियों को पोस्टकर उसे आत्महत्या कर लेनी है । अभी अभी ! जस्ट नाऊ ।

वह उठा । अलमारी खोली और अपना सबसे बढ़िया सूट निकाला ! मरने से पहले उसे कपड़े तो बदल ही लेने चाहिए । नया सूट पहनकर मरना अधिक अच्छा लगेगा ।

कोट के बटन बन्द करते हुए उसने सोचा—कितनी धूप है बाहर ! इस समय बाहर जाना कितना कठिन होगा ! इससे तो अच्छा था कि चिट्ठियाँ शाम को पोस्ट करता । कम-से-कम इस धूप में बाहर तो नहीं जाना पड़ता । पर अब वह चिट्ठियाँ लिख चुका था और उनका उसकी टेबिल पड़े रहना ठीक नहीं था । कोई आ जाये और जिद कर लैटर खोल डाले । होस्टल में एक-से-एक कमबख्त पड़े हैं । वह किसीका हाथ पकड़ लेगा क्या ?

वैसे भी प्रेमिका को जल्दी-से-जल्दी उसकी आत्महत्या की न्यूज मिलनी चाहिए । कहती थी, उसमें गट्स नहीं है । गट्स की मम्मी !

सबसे आर्यडियल यही टाइम था । जल्दी से चिट्ठियाँ पोस्ट करे और आकर एकान्त में आत्महत्या कर डाले । यदि उसने थोड़ी भी देर की तो कोई-न-कोई आ जायेगा । फिर वह कुछ नहीं कर पायेगा । दुनिया तो चाहती ही है कि उसकी प्रेमिका उसे चूहा समझे । पर वह उसे ऐसा कुछ भी समझने नहीं देगा । पिछली बार सिर्फ इसी बात पर तो वह चलती साइकिल से कूद पड़ा था ।

रस-सिद्धान्त : पुनर्मूल्यांकन

प्रस्तावना

मेरे सामने इस समय एक बहुत गम्भीर समस्या है : काव्यशास्त्र की । उस पर विचार करने का मन है । अभी विचार करूँगा भी ।

पर साथ ही मेरे मन में सच्चे साहित्यकार, और पारखी दृष्टि के पाठक की भावुकता और आक्रोश है ।

पर, बात किसी बड़े आदमी से आरम्भ होनी चाहिए । स्वयं अपनी बात आरम्भ में नहीं कहनी चाहिए । अपनी बात तो सब के अंत में कहनी चाहिए । इससे शिष्टता का निर्वाह होता है, फिर अंत में कही जाने के कारण, अपनी बात महत्वपूर्ण भी लगती है । पाठक को याद भी रहती है—पहले कही हुई बात तो वह सहज ही भुला देता है ।

भूमिका

तो बात रवीन्द्रनाथ ठाकुर से आरम्भ करूँ । उन्हें एक बार रामकथा के लेखकों पर क्रोध आया था कि उन्होंने उर्मिला की उपेक्षा क्यों की ? महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसी बात को लेकर गुप्तजी से साकेत भी लिखवा लिया और यह कहकर कवियों को क्षमा भी कर दिया कि कवि-

गण स्वभाव से ही उच्छृंखल और असंतुलित होते हैं ।

मेरा आरोप कवियों पर नहीं काव्यशास्त्रियों पर है । अतः यह आरोप हँसी में उड़ा दिए जाने योग्य नहीं है । गम्भीर बात है (मैं इससे यह भी प्रमाणित करना चाहता हूँ कि मैं गंभीर साहित्य की रचना भी करता हूँ) । इन काव्यशास्त्रियों ने, सब-के-सब ने, नारी जाति की उपेक्षा की है । पुराने युग की बात और थी । तब लोग शूद्र और नारी को नीच समझते थे । किन्तु, आज के आधुनिक युग में नारी को नीच नहीं समझा जा सकता । समाज में सब लोग बराबर हैं । नारी को नीच समझनेवाला व्यक्ति संवैधानिक रूप से अपराधी है (देखिए : भारतीय संविधान, तत्सम्बन्धी धारा) ।

विषय-प्रवेश

अब मैं मूल विषय की ओर आता हूँ और जनता-जनार्दन के न्यायालय में--विशेष रूप से महिलाओं के न्यायालय में—आज तक के समस्त काव्य-शास्त्रियों पर नारी की उपेक्षा तथा अवज्ञा का अभियोग लगा रहा हूँ ।

देखिए, काव्यशास्त्रियों ने (सब ने) चाहे रस को साहित्य की आत्मा माना हो या न माना हो, रस के भोक्ता पर विचार किया है । लेखक लिखता है तो उसे कैसा रस मिलता है, पाठक पढ़ता है तो उसे कैसा रस मिलता है । किन्तु, आज तक किसी भी काव्यशास्त्री ने इस तथ्य पर विचार करने का कष्ट नहीं किया कि लेखक की रचनाएँ छपती हैं तो उसकी पत्नी को किस रस की अनुभूति होती है और पाठक पढ़ता है तो उसकी पत्नी को किस रस की अनुभूति होती है ?

मेरा तो विचार है कि रस के अंग-उपांगों का विस्तृत विवेचन होना चाहिए—नई और मौलिक दृष्टि और विशेषकर पत्नी की दृष्टि से । इस दृष्टि से रस की कई स्थितियाँ हैं ।

प्रथम स्थिति

पत्नी कमरे में प्रवेश करती है तो बहुत प्रसन्न है ।

“वही, माई गर्ल फ्रेंड ! माशूक की चाची !” गुप्ता बोला—“मैं उस के लिए मूवी के टिकट लाया और वह अपने पापा के साथ फुटबाल का मैच देखने चली गयी।”

वह चुपचाप गुप्ता को देखता रहा।

“वांट टु कम विद मी ?” गुप्ता ने पूछा—“अच्छी पिकचर है।”

उसने सोचा, गुप्ता कितना दुखी है इस समय। बेचारा ब्रोकन-हार्ट। उसे किसीकी सहानुभूति मिलनी चाहिए। वैसे भी इट इज गुड टु हिट ए मूवी, विफोर वन डाइज। मरकर यह तो कह सकेगा न कि उसने भी पिकचर देखी है !

पिकचर-हॉल से बाहर निकलकर उसने देखा था कि काफी अँधेरा हो गया था। गुप्ता कनाट-प्लेस में ही कहीं चाय पीना चाहता था। फिर मौरिस नगर तक जाने में और समय लगेगा। तब तक काफी रात हो जायेगी। तो क्या उसे रात के अँधेरे में आत्महत्या करनी पड़ेगी ?

वह एकदम डर गया। रात के अँधेरे में उसके कमरे में लटकती अकेली लाश ! उसका चेहरा पीला पड़ गया। नसों का खून ठंडा पड़ने लगा।

गुप्ता ने महसूस किया कि वह चुप है। उसने कहा भी, पर वह कुछ नहीं बोला। उसने महसूस किया कि उसे पसीना आ रहा था। ठंड में भी पसीना। उसकी रीढ़ पर से बूंद-बूंद कर पसीना गिर रहा था।

होस्टल लौटकर वह गुप्ता के कमरे में बैठा रहा। गुप्ता बहुत देर तक उसके जाने की प्रतीक्षा करता रहा, पर उसने जाने में कोई रुचि नहीं दिखायी। वह बैठा रहा चुपचाप। वह स्वयं कुछ नहीं बोल रहा था और गुप्ता के कुछ पूछने पर ‘हूँ-हां’ कर रहा था। अन्त में गुप्ता ने कहा—“अवे, अब अपने कमरे में जा भी !”

वह खड़ा हुआ, बिना कुछ बोले और सहसा लड़खड़ा गया। उसने दीवार का सहारा लिया। अपने को संभाला और होंठों पर जीभ फिराकर बोला—“वहाँ वह लटका है...”

“कौन ?” गुप्ता ने उसे आश्चर्य से देखा।

और फिर गुप्ता झपटकर उठा और उसके हाथ से चाबियाँ छीन

उसके कमरे की ओर दौड़ा । उसने दरवाजा खोला और भीतर घुस गया ।

वहाँ कुछ नहीं था ।

गुप्ता वीखलाया हुआ लौटा ।

“क्या है वहाँ ?”

वह कुछ नहीं बोला ।

गुप्ता कुछ समझ नहीं रहा था । वह गुप्ता का सहारा लेकर चल रहा था । अपने कमरे के द्वार पर आकर वह फिर रुक गया ।

“क्या हो गया तुम्हें ?” गुप्ता ने उसे कमरे में धकेला ।

वह लड़खड़ाते हुए दो-एक कदम बढ़ा और जाकर चारपाई पर गिर पड़ा ।

उसकी छाती फटी जा रही थी और साँस लेने में उसे बहुत कठिनाई हो रही थी ।

उसकी आँखों के सामने, उसके कमरे में अँधेरे में छत से लटकती एक लाश थी !

डूबते हुए मन के साथ वह सोच रहा था, अब आत्महत्या किये बिना ही...।



होता है कि यह रचना विश्व-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है और वह केवल उसीके कारण लिखी गयी है । यह रस शराब के नशे के समान तेज होता है । इसका स्थायी भाव 'लवाड़िया' भाव होता है और इसे 'स्वमहानता' रस कहते हैं ।

चौथी स्थिति

चौथी स्थिति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और वह रस भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । यह स्थिति प्रत्येक लेखक की पत्नी के जीवन में आती है । इसके लिए पत्नी का साहित्यिक रुचि का होना या सुशिक्षित होना आवश्यक नहीं है ।

यह स्थिति तब आती है, जब किसी रचना का पारिश्रमिक आता है । इसमें सबसे पहले धन-प्राप्ति स्थायी भाव उदित होता है । लेखक यदि अपनी इच्छा से उस धन की साड़ी ला दे तो 'साड़ी-रस' की निष्पत्ति होती है और उसकी परिणति शृंगार रस में होती है । यदि वह अपनी इच्छा से साड़ी लाकर न दे तो पत्नी पहले करुण और फिर रौद्र रस का आस्वादन करती है । यह क्रम उलटकर पहले रौद्र और फिर करुण भी हो सकता है । किन्तु उनके पश्चात् अंत में 'साड़ी-रस' की निष्पत्ति अनिवार्य है । इस मार्ग से आये हुए साड़ी-रस की अंतिम परिणति शृंगार रस में न होकर 'शिकायत-रस' में होती है । इस 'शिकायत-रस' की अवधि काफी लम्बी होती है और यह रस बीच-बीच में तिरोहित होकर, स्वयं को पुनः-पुनः प्रकट करता रहता है ।

परिशिष्ट

अभी-अभी मेरे निर्देशक महोदय ने मुझे बताया है कि पाठक की पत्नी के रसास्वादन का विषय, विश्वविद्यालय ने किसी और को दे दिया है । इसलिए उस पर मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं है ।



बाढ़ का नियन्त्रण

मैंने बाढ़-नियंत्रक के दफ्तर में टेलीफोन किया। उधर से किसीने रिसीवर उठाकर कहा, “कहिए।”

“यमुना में बाढ़ आई है।” मैंने कहा।

“मालूम है।” उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, “हमने भी सवेरे समाचार-पत्र में पढ़ा था।”

“यहाँ पानी से घिरे हुए पेड़ पर टंगे हुए दो आदमी चिल्ला रहे हैं।” मैंने कहा।

“इसमें चिल्लाने की क्या बात है, कोई एवरेस्ट पर तो चढ़े नहीं हैं। पेड़ पर ही तो चढ़े हैं।” वह बोला।

“वे बाढ़ में घिरे हुए हैं।” मैंने बताया, “और सहायता के लिए पुकार रहे हैं।”

“अच्छा ! हम अभी प्रबन्ध करते हैं।” और उसने रिसीवर रख दिया।

थोड़ी ही देर में वहाँ पुलिस का फ्लाइंग स्कवैड आ पहुँचा। उनकी गाड़ी रुकी और दो-तीन सिपाही और एक सब-इंस्पेक्टर फुर्ती से गाड़ी में से कूद पड़े।

“किसने टेलिफोन किया था ?” सब-इन्सपैक्टर भीड़ की ओर देखकर चिल्लाया।

“आज बड़ा मजा आया ।” वह कहती है ।

“चुप करो !” लेखक कहता है, “मैं अभी लिख रहा हूँ ।”

(पत्नी को यहाँ डाँट-रस का आस्वादन मिलता है ।)

पत्नी कुछ देर चुपचाप खड़ी रहती है । फिर वह साहस बटोरकर हल्के-से कहती है, “अच्छा एक बात बता दो, फिर मैं चली जाऊँगी । शाम को पिकचर चलोगे ?”

“नहीं !” लेखक डाँट देता है ।

(यहाँ पत्नी बोर-रस का आस्वादन करती है ।)

इस प्रकार के रस का विभिन्न प्रकार से परीक्षण करके देखा गया है कि इससे घर की शांति और संतुलित वातावरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है ।

लेखक जब भी लिखना ! बन्दकर अपनी पत्नी के पास आता है, उनमें लड़ाई जरूर होती है और अंत में लेखक को पत्नी से अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगनी पड़ती है ।

विषयान्तर : शक्तिभा

इस घटना के माध्यम से मैं एक और नयी काव्यशास्त्रीय स्थापना करना चाहता हूँ, जो लेखक की पत्नी के विषय में नहीं, स्वयं लेखक के विषय में है ।

आचार्यों ने स्वीकार किया है कि सृजन के क्षण में लेखक में एक विशिष्ट प्रकार की स्फूर्ति होती है, जो उससे लेखन-कार्य करवाती है, यह एक दैवी शक्ति है और इसे प्रतिभा कहते हैं । स्थापना यह है कि लिखवाने वाली इस दैवी शक्ति के साथ उस समय एक पहलवानी शक्ति भी लेखक में आ जाती है, जिसके कारण पत्नी से सदा डरनेवाला लेखक, लिखते समय अपनी पत्नी से एकदम नहीं डरता और उसे सदा डाँट देता है । इस शक्ति को ‘प्रतिभा’ के तौल पर मैंने ‘शक्तिभा’ नाम दिया है । मेरा स्पष्ट, दृढ़ तथा संतुलित मत है कि लेखन-क्रिया में रत, लेखक को, सिवाय सम्पादक के और कोई विचलित नहीं कर सकता ।

दूसरी स्थिति

दूसरी स्थिति सारे लेखकों की पत्नियों के जीवन में नहीं आती। यह उन्हीं पत्नियों के लिए आरक्षित है, जो पढ़ी-लिखी हैं और साहित्यिक रुचि भी रखती हैं। केवल साहित्यिक रुचि रखना ही पर्याप्त नहीं है, लेखक द्वारा उस साहित्यिक रुचि की मान्यता भी अनिवार्य है।

इन पूर्व-बंधनों पर पूरी उतरनेवाली पत्नी के जीवन में रसास्वादन की यह दूसरी स्थिति आती है। लेखक अपनी रचना पूरी कर, थोड़ी देर इधर-उधर टहलता रहता है और फिर पत्नी से पूछता है “मेरी नई रचना सुनोगी?”

यदि पत्नी दाँतों से धागा तोड़, मशीन के हथ्ये को रोक कहे, “पहले मुन्ने की कच्छी सी लूँ।” तो इसे “टालमटोल रस” कहते हैं। वहाना कोई भी हो, रस वही रहेगा, जैसे सिद्धान्त कोई भी हो ‘नाट्यशास्त्र’ से ही आरम्भ होगा।

फिर लेखक पत्नी को रचना सुनाता है। रचना सुनते समय पत्नी जिस रस का आस्वादन करती है, उसे “परम-रस” कहते हैं। यह रस रचना सुनकर उदित नहीं होता, यह सोचकर उदित होता है कि वह चाहे तो रचना की बुराई कर, लेखक को नीचा भी दिखा सकती है। इस रस का स्थायी भाव, ‘पत्नी का अहं’ नामक भाव होता है और यह सारे स्थायी और संचारी भावों में प्रमुख है।

रचना सुनकर पत्नी को आलोचना-रस की अनुभूति होती है— जिसके पश्चात् पति-पत्नी में प्रेम या झगड़े की वृद्धि का दायित्व पत्नी की बुद्धि पर होता है।

तीसरी स्थिति

तीसरी स्थिति रचना के प्रकाशित हो जाने पर आती है। इसमें लेखक की पत्नी वह पत्रिका या पुस्तक लेकर अपनी सहेलियों से मिलने जाती है। वहाँ वह उस रचना के लिखे जाने की परिस्थितियाँ और उसके लेखन में अपने सहयोग की चर्चा करती है। उस चर्चा का सारांश यह

गया, “कहाँ गोता मारूँ साहब ?”

“पेड़ के पास ।” उसने कहा ।

“वे लोग अभी डूबे नहीं हैं ।” मैंने उसे बताया, “पेड़ पर चढ़े बैठे हैं । यह गोताखोरों का काम नहीं है ।”

“देखो !” वह नाराज हो गया, “तुम हमारी हर बात में टाँग मत अड़ाओ । हमारे पास तीन ही चीजें हैं—सीढ़ी, रस्सी और गोताखोर । यदि उन दोनों को पेड़ से उतारना है तो या तो पेड़ तक सड़क बनवाओ या पानी को सूखने दो । जब हमारी गाड़ी पेड़ के पास पहुँच सकेगी, हम अपनी सीढ़ी से उन्हें उतार लेंगे । या फिर उनसे कहो कि वे लोग हमसे इतनी दूरी पर आ जाएँ, जितनी लम्बी हमारे पास रस्सी है । हम अपनी रस्सी फेंककर उन्हें बाहर खींच लेंगे । या फिर उनको कहो कि वे लोग किनारे के पास कहीं डूब जाएँ, हमारा गोताखोर उनके शवों को निकाल लेगा ।”

“इनमें से कुछ भी नहीं हो सकता ।” मैं बोला ।

“तो न हो,” वह बोला, “हम जा रहे हैं । चलो वे । जहाँ पब्लिक सहयोग ही न दे, वहाँ हम क्या कर सकते हैं !”

और जैसे घंटी बजाते वे आए थे, वैसे ही लौट गए ।

मैंने वाढ़-नियन्त्रक के दफ्तर में फिर टेलीफोन किया ।

“फायर-ब्रिगेड वाले भी लौट गए हैं ।” मैंने कहा ।

“फिर ?” उसने पूछा ।

“कोई मोटर बोट भेजिए ।” मैंने कहा ।

“मोटर बोट भी है, हमारे पास ।” उसने कहा, “पर छोटी मोटर-बोट इस तेज बहाव में नहीं चल सकेगी । बड़ी मोटर-बोट पुल के उस पार है, इस पार नहीं आ सकेगी । मीडियम साइज अभी खरीदी नहीं गई । वैसे अगली वाढ़ से पहले हम खरीद लेंगे, आशा है । अगली वाढ़ तक यदि वे लोग वहीं टंगे रहे, तो मैं अवश्य मीडियम साइज मोटर-बोट भेजूंगा । आपको वचन देता हूँ ।” वह रुका, “और एक बात और है । अब फिर टेलिफोन मत कीजिएगा । मेरी छुट्टी का समय हो गया है । अब यहाँ टेलिफोन उठानेवाला भी कोई नहीं होगा । वैसे वे पेड़ पर

चढ़े बन्दर आपके रिश्तेदार तो नहीं हैं ?”

“नहीं ।” मैंने कहा ।

“तो फिर जाकर सो रहिए ।” उसने रिसीवर रख दिया ।

रात को मैंने रेडियो पर समाचार सुने । आकाशवाणी से जोरदार घोषणाएँ हो रही थीं : “यमुना की बाढ़ को रोकने के लिए सरकार सामरिक धरातल पर प्रबन्ध कर रही है । अब तक की सूचनाओं के अनुसार बाढ़ में घिरे सारे पशुओं को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा दिया गया है ।”



“मैंने किया था ।” मैं आगे बढ़ आया, “जल्दी से उन आदमियों को पेड़ से उतारिए, नहीं तो वे लोग डूब जाएंगे। पानी बढ़ता जा रहा है ।”

“जितना पूछा जाए, उतना जवाब दो । साले सब खुद को इन्टैलिजेंट ही समझते हैं ।” सब-इन्स्पेक्टर ने मुझे डाँटा, “फोन तुमने किया था ?”

“जी हाँ !”

“अपनी मर्जी से किया था या किसी और हरामजादे ने करवाया था ?” उसने पूछा ।

“अपनी इच्छा से किया था ।”

“किसीके घर से किया था या पब्लिक वूथ से ?”

“पब्लिक वूथ से ।”

“ठीक है ।” वह फिर बोला, “उन सालों को पेड़ पर चढ़े तुमने स्वयं देखा था कि किसी और उल्लू के पट्ठे ने बताया था ?”

“मैंने स्वयं देखा था ।” मैंने कहा ।

“वे लोग पेड़ पर अपनी इच्छा से चढ़े थे या किसीने चढ़ाया था ?” उसने मुझे घूरा ।

“मुझे पता नहीं ।” मैंने कहा, “मैंने उन्हें चढ़ते हुए नहीं देखा । चढ़े हुए देखा है ।”

“तुम्हारा अनुमान क्या है ?” उसने मुझे और जोर से घूरा ।

“मेरा अनुमान है कि बाढ़ के पानी से बचने के लिए स्वयं चढ़ें होंगे ।”

“चलो वे !” सहसा सब-इन्स्पेक्टर सिपाहियों की ओर मुड़ा, “यह भी साला कोई पुलिस-केस है । अपनी मर्जी से पेड़ पर चढ़े हैं, जब जी चाहेगा उतर आएँगे । कैसा जमाना आ गया है, पुलिस का काम सालों को पेड़ से उतारना ही रह गया है ।”

मैंने बाढ़-नियंत्रक के दफ्तर में फिर टेलिफोन किया और सूचित किया कि पुलिस पूछताछ करके जा चुकी है और वे दोनों आदमी बाढ़ में घिरे पेड़ पर लटक रहे हैं और पानी बढ़ता जा रहा है ।

उधर से उत्तर मिला, “आप घबराएँ नहीं । पुलिस पूछताछ करने

गई थी। अब, जबकि आरम्भिक पूछताछ हो चुकी है, हम फायर-ब्रिगेड को भेज रहे हैं। वे लोग आकर उन्हें पेड़ से उतारेंगे।”

मैं फिर भीड़ के साथ खड़ा प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर में घंटी बजाते हुए फायर-ब्रिगेड दौड़ा आया।

“किसने फोन किया था?” फायर-ब्रिगेड के कप्तान ने पूछा।

“मैंने!”

“क्या बात है?”

“दो आदमी उस पेड़ पर टंगे हैं।” मैंने बताया, “उन्हें उतारना है।”

“पेड़ पर ही तो टंगे हैं, कोई चाँद पर तो नहीं टंगे।” वह बोला, “उतर आएँगे। तुम्हें जल्दी क्या है?”

“पानी बढ़ रहा है।” मैंने उसे समझाया, “उन्हें उतारा नहीं गया, तो वे पानी में डूब जाएँगे।”

“लगाओ वे सीढ़ी।” उसने अपने साथियों की ओर देखकर आज्ञा दी और फिर बड़बड़ाया, “पता नहीं ये साले हिंदुस्तानी ऐसी जगहों पर क्यों चढ़ जाते हैं, जहाँ से उतर नहीं सकते। उधर वे रूस-अमेरिका वाले चाँद से भी स्वयं ही उतर आते हैं।”

“वहाँ तक सीढ़ी नहीं पहुँच सकती।” मैंने उसे समझाया, “वह पेड़ सड़क पर नहीं है। यमुना की बाढ़ के पानी में घिरा हुआ है और आध मील पानी के भीतर है।”

“सीढ़ी नहीं पहुँच सकती।” वह फिर बड़बड़ाया, “अच्छा रस्सा फेंको।”

“आध मील लम्बी रस्सी हमारे पास नहीं है।” उसके एक साथी ने बताया।

“छोटी है या बड़ी है?” उसने पूछा।

“छोटी है।” उत्तर मिला।

“फिर तो बात नहीं बनेगी।” उसने कहा, “अच्छा गोताखोर को कहो गोता मारे।”

गोताखोर, अपने कील-काँटे से लैस, आकर उसके पास खड़ा हो

नमस्ते

मैं उसकी दुकान के सामने से गुजरा तो उसने मुझे नमस्ते कर दी। मुझे अच्छा लगा कि किसी दुकानदार ने मुझे नमस्ते की। अब तक तो कोई नहीं करता था। इसने ही क्यों की? फिर मैं भेंप-सा गया, हो सकता है कि उसने किसी और के भ्रम में मुझे नमस्ते कर दी हो। यह बहुत बुरी बात होगी। जिस दिन उसे पता लगेगा, कि मैं वह नहीं हूँ, जिसे समझकर उसने नमस्ते की थी, तो उसे कितना क्रोध आयेगा कि मैंने उसे वैसा लगकर धोका दिया था। हो सकता है कि वह मुझे इसी भ्रम में कई महीनों तक नमस्ते करता रहे; और जब उसे मेरी असलियत का पता चलेगा तो क्या वह चाहेगा कि उसकी नमस्ते का बदला उतारने के लिए मैं उतनी ही बार उसे नमस्ते करूँ। मैं तो उसे लगातार चार-छह महीने नमस्ते नहीं कर सकूँगा। वह तो अपनी दुकान के दरवाजे के बीच में बैठा रहता है और घंटे-दो-घंटे में ही चार-छह बार नमस्ते ठोक देता है। पर मैं ऐसा करता एकदम पागल लगूँगा।

उसने अभी नई-नई दुकान की है। हो सकता है उसे यह पता न हो कि इस बाजार में मुझे नमस्ते करने का रिवाज नहीं है। नया-नया है न, मेरी साख को नहीं जानता। जान जाएगा तो स्वयं छोड़ देगा।

जब मैं नया-नया आया था यहाँ तो जिस किसी दुकान में जाता, दुकानदार मुझे नमस्ते करता था। तब शायद घर में कुछ मेहमान आये

थे । सामान भी ज्यादा खरीदना पड़ता था और शायद समय भी नहीं होता था—बस अपनी परेशानी में भाव-ताव नहीं पूछा करता था । इसी से वे लोग मुझे बड़ा साहव समझते थे और नमस्ते करते थे ।

जब मैं सामान ले चुकता तो दुकानदार अपने नौकर को आवाज लगाता—“ऐ ! साहव का सामान गाड़ी में रखकर आओ ।”

“गाड़ी नहीं है ।” मैं कह देता ।

“आज पैदल ही आये हैं ।” वह हँसकर कहता ।

“हाँ । बाजार तक पैदल ही आता हूँ ।” मैं कह देता हूँ । पर उसे यह नहीं बताता कि शेष जगह बस पर जाता हूँ । गाड़ी है ही नहीं । यह काम कुछ दिनों तक चलता रहा था । एक दिन मैंने उसके नौकर को गाड़ी में सामान रखने से नहीं रोका । वह लिफाफे उठाये हुए बाहर आया तो मैंने मुन्ने की बच्चा-गाड़ी की ओर संकेत कर दिया, “बाबा के पास रख दो ।”

मेरी गाड़ी का भेद क्या खुला, उसने नमस्ते ही बन्द कर दी ।

इस नये दुकानदार ने नमस्ते कर-करके मेरी आफत कर दी और आखिर तंग आकर मुझे अपनी पत्नी से कहना पड़ा कि अब हम अपना महीने भर का सामान इस नये दुकानदार से लिया करेंगे ।

वह हम दोनों को नमस्ते करता, बड़े सम्मान से कुरसी पर बिठाता, कोका-कोला पिलाता, पर चाहता था कि हम चीजों के भाव न पूछें । एक बार उसने डालडे के डिब्बे में पच्चीस नये पैसे अधिक लगा लिये, दालों में पाँच-पाँच दस-दस पैसे बढ़ा दिये । मैंने शिकायत की तो उसने एक बार नमस्ते अधिक कर दी । मैंने हिसाब लगाया, मुझे उसकी नमस्ते बढ़ी महँगी पड़ रही थी । सेल्स-टैक्स के समान यह नमस्ते-टैक्स हर चीज को महँगी कर रहा था । दाल का हर चम्मच एक नया पैसा महँगा हो गया था । सब्जी की हर छाँक में उसकी एक नमस्ते थी और मेरी जेब के दस पैसे । मैंने उससे सामान लेना बन्द कर दिया और उसने अपनी नमस्ते बन्द कर दी । उसने महीने में कोई डेढ़-सौ नमस्ते बचाई और मैंने लगभग पन्द्रह-तीस रुपये बचा लिए ।

कालेज में लड़के भी कुछ दुकानदारों के हिसाब से नमस्ते करते हैं ।

एक लड़का बड़ी शालीनता से मुझे दिन में दो-तीन बार नमस्ते किया करता था। पर मेरी क्लास में वह अपने आस-पास के लड़कों से बातें बहुत करता था। मैं जब डाँटने के विचार से उसकी ओर देखता, वह मुझे कुछ इस प्रकार देखता, जैसे कह रहा हो, देखो मैं तुम्हें दिन में तीन बार नमस्ते करता हूँ। और मैं हर बार उसे छोड़ दिया करता था। पर एक बार मैंने उसे डाँट ही दिया। वस अगले दिन से उसने नमस्ते करनी बन्द कर दी। वह लड़का मुझसे तीन साल पढ़ा, पर उसने मुझे कभी नमस्ते नहीं की। मैंने हिसाब लगाया है। उसे एक बार डाँटने की मूर्खता कर मैंने अपने हिस्से की हजारों नमस्ते खो दी थी।

पर एक लड़का मुझे इसका उलटा भी मिला है। वह मुझे कभी भी नमस्ते नहीं करता था। वस-स्टैंड पर मिलता तो बहुत घूर-घूरकर देखता। सिगरेट पी रहा होता तो मुझे देखकर, अन्य लड़कों के समान सिगरेट छिपाता भी नहीं। उल्टे इस अन्दाज से धुआँ उड़ाता, जैसे चेतावनी दे रहा हो, “खबरदार, जो मुझे डाँटा।”

मैं भी डरकर चुप ही रहा। पर एक दिन गुस्सा आ गया और डाँट ही दिया। डाँटकर मन-ही-मन डरता रहा कि जाने यह क्या करे। पर उसने किया यह कि मुझे देखकर सिगरेट फेंक दी और मुझे नमस्ते करने लगा। वह जब तक कालेज में रहा मुझे नमस्ते करता रहा। उस एक डाँट ने मुझे लगभग हजार-एक नमस्ते दिलवाई। इन दोनों लड़कों का हिसाब करने पर भी मैं घाटे में ही रहा, क्योंकि दूसरा लड़का दिन में केवल एक बार नमस्ते करता था।

कुछ लड़के नमस्ते करने या न करने की नीति प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में निर्धारित करते हैं। यदि वर्ष के आरम्भ में वे नमस्ते करने का निर्णय लेते हैं, तो वर्ष भर करते रहते हैं और यदि वर्ष के आरम्भ में उन्होंने नमस्ते नहीं की, तो मैं समझ जाता हूँ कि वे अब इस वर्ष नमस्ते नहीं करेंगे। अधिकतर वे लोग अपना टाइम-टेबल देखकर अपनी नीति की घोषणा करते हैं। वे टाइम-टेबल देखकर पता लगाते हैं—क्या मैं इस वर्ष उनकी क्लास लूँगा? यदि ‘हाँ’ तो वे मुझे नमस्ते करेंगे। यदि नहीं, तो वे नमस्ते नहीं करेंगे। इस नीति को देखते हुए मुझे बहुधा

अपने अध्यक्ष से कहना पड़ता है कि एक ही क्लास के हफ्ते में चार पीरियड लेने से, मैं ज्यादा अच्छा यह समझता हूँ कि मुझे हर क्लास का कम-से-कम एक पीरियड अवश्य दिया जाये, ताकि मेरी नमस्ते की ग्राहकी बनी रहे। एक क्लास छूट गई तो वर्ष भर में हजारों नमस्ते से वंचित हो जाने का भय मुझे त्रस्त किए रहता है।

कुछ लड़कों को अध्यापक के प्रति नहीं, विषय के प्रति श्रद्धा होती है। मेरा पिछला घर जिस मुहल्ले में था, वहाँ के नाई का लड़का दिन को बाप के साथ दुकान पर काम करता था और शाम को कालेज पढ़ने जाता था। अच्छा लड़का था। मुझे बाप की अपेक्षा बेटे से बाल कटवाना ज्यादा अच्छा लगता था। उसे भी कहीं से पता लग गया था कि मैं किसी कालेज में पढ़ाता हूँ—उसे नहीं पढ़ाता तो क्या हुआ, आखिर तो अध्यापक हूँ। मैं जब भी जाता, वह बड़े सम्मान से नमस्ते किया करता था।

एक दिन बहुत संकोच करते-करते उसने मुझसे पूछ लिया कि मैं राजनीतिशास्त्र पढ़ाता हूँ या अंग्रेजी? प्रश्न जरा अटपटा था। अधिकांशतः लोग पूछते हैं कि आप क्या पढ़ाते हैं? पर उसने केवल दो ही विषयों से सम्बन्ध प्रश्न किया था? कह नहीं सकता कि उसे मेरा इन दो ही विषयों से सम्बन्ध क्यों लगा। मैंने उसे बता दिया कि मैं इन दोनों में से कोई भी विषय नहीं पढ़ाता। उसने यह पूछने की आवश्यकता ही नहीं समझी कि मैं क्या पढ़ाता हूँ। उसकी श्रद्धा समाप्त हो चुकी थी। उसके बाद से उसने मुझे कभी नमस्ते नहीं की। मुझे आज तक यह भी मालूम नहीं हो सका कि अब तक उसने जितनी बार मुझे नमस्ते की, वह अंग्रेजी को की या राजनीतिशास्त्र को।

कुछ लोग मौसमी नमस्ते करते हैं। परीक्षा के दिनों में जिस प्रकार मंदिरों में भीड़ बढ़ जाती है, वैसे ही मेरे दरवार में 'नमस्ते' की बहुत भीड़ हो जाती है। परीक्षा से पहलेवाली नमस्ते परचे में आनेवाले प्रश्नों की जिज्ञासु होती है और परीक्षा के बादवाली अंक बढ़वाने की निवेदक। वर्ष के अन्तिम दिनों में हाजरियों की संख्या बढ़वानेवाली नमस्ते से भी कभी-कभी भेंट हो जाती है। वर्ष

आरम्भ होने से कुछ पूर्व, जैसे ही मुहल्ले का कोई लड़का, सहसा ही मुझे नमस्ते करने लगता है, मैं समझ जाता हूँ कि उसने हायर सैकेंडरी की परीक्षा पास कर ली है और उसे कालेज में प्रवेश चाहिए। कालेज में प्रवेश माँगती नमस्ते का सबसे बड़ा गुण यह है कि लड़के का सारा परिवार नमस्ते करने लगता है, जैसे लड़की का रिश्ता पक्का करने से पूर्व उसका सारा परिवार करता है।

●●

अकाल-पीड़ित देश और दूध का मेढक

अपने देश के एक महापुरुष ने कहा था कि दूसरों पर विश्वास करने से अच्छा है कि अपने ऊपर विश्वास किया जाये। इस सिद्धान्त को एक वे मानते थे और एक मैं मानता हूँ। मैं भी दूसरों पर विश्वास करने से अच्छा समझता हूँ कि अपने ऊपर विश्वास करूँ। हमारे मंत्रियों ने कब से घोषणा कर रखी है कि हमने विदेशों से अन्न का आयात बन्द कर दिया है। पर मेरा शरीर यह नहीं मानता। मंत्रियों और अपने शरीर के मत-वैभिन्य के कारण मुझे अपने शरीर का ही पक्ष लेना पड़ता है।

बचपन में मैं अपनी माँ से बहुत डरता था। काफी दिनों तक डरता रहा। तब तक डरता रहा, जब तक मेरी माँ ने स्वयं अपने हाथों मेरा विवाह मेरी पत्नी के साथ नहीं कर दिया। मैं तब भी अपनी माँ से डरता रहा। फिर अचानक एक दिन मैंने पाया कि मैं अपनी माँ से नहीं डरता और कल तक जिससे एकदम नहीं डरता था, आज अपनी उस पत्नी से डरने लगा हूँ। फिर काफी दिनों तक पत्नी से डरता रहा और पहले के ही समान एक दिन अचानक मैंने पाया कि मैं अपनी पत्नी से भी नहीं डरता, पर सहसा ही ऑस्ट्रेलिया से डरने लगा हूँ।

मैं मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ कि मेरा स्तर अब पहले से बहुत ऊँचा उठ गया है। पहले मैं केवल एक स्त्री से डरता था, अब मैं एक देश से डरने लगा हूँ। पारिवारिक भय से अन्तर्राष्ट्रीय भय निश्चित रूप

से ऊँची चीज है। मैं अपनी उपलब्धि से प्रसन्न हुआ और निष्ठापूर्वक ऑस्ट्रेलिया से डरता रहा। फिर जैसे माँ का डर, पत्नी के डर में हस्तांतरित हुआ था, वैसे ही ऑस्ट्रेलिया का डर, अमरीका और फिर कनाडा के भय में परिवर्तित होता रहा। और आज तक बारी-बारी वह बदलता रहता है। कभी एक से डरता हूँ, कभी दूसरे से।

अपने जीवन के इन महान् अनुभवों से मैंने कुछ सिद्धान्त निकाले हैं। मेरे अनुभवों ने मुझे सिखाया है कि आदमी जिसका दिया खाता है, उससे अवश्य डरता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण इस महान् देश का महान् ग्रन्थ महाभारत है। भीष्म पितामह दुर्योधन का दिया खाते थे, इसलिये दुर्योधन से डरते थे। यदि दुर्योधन से न डरते होते तो अवश्य ही पांडवों की ओर से लड़ते।

मैं पहले माँ का दिया खाता था, फिर पत्नी का, इसलिये उनसे डरता रहा। फिर ऑस्ट्रेलिया, अमरीका और कनाडा का दिया खाता रहा, इसलिये उनसे डरता रहा। मेरा शरीर एक प्रकार का मापक यंत्र है, जो अपने भय के द्वारा बता देता है कि आजकल मैं किसका दिया खा रहा हूँ।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के धरातल पर, चाणक्य के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त मेरा अपना सिद्धान्त है। जो देश किसी अन्य देश को डराना चाहता है, उसे मेरा परामर्श है कि वह उस देश को अन्न देना आरम्भ कर दे। शत्रु देश का अन्न खाकर वह देश अवश्य ही उससे भयभीत हो जायेगा। पाकिस्तान यदि अपनी सारी उपज भारत को दे दे, तो भारत एक ही वर्ष में पाकिस्तान के भय से काँपने लगेगा और कँपकँपी से बचने के लिये ऊनी कपड़ों का आयात करता फिरेगा।

संसार में कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो किसी से नहीं डरते, यहाँ तक कि ईश्वर से भी नहीं डरते। मैं अपने सिद्धान्त के प्रकाश में यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि वे लोग वीर, साहसी अथवा निर्भीक हैं। मैं यह मानता हूँ कि वे लोग भूखे हैं। जो भूखा है, वह किसी का दिया नहीं खाता, अतः वह किसी से नहीं डरता। जिस देश में इस प्रकार के 'किसी से न डरनेवाले' लोगों की संख्या बहुत अधिक हो, वह देश अकाल-ग्रस्त

समझा जाना चाहिए । इस बात का प्रमाण राष्ट्रीय धरातल पर राणा प्रताप का प्रदेश और अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर चंगेज खाँ का प्रदेश है । किसी देश में होनेवाली भूख-हड़तालों की संख्या भी वहाँ की निर्भीकता से सम्बन्धित होती है, जो अकाल पर आश्रित है । खाते-पीते प्रदेश के लोगों को मेरी सलाह है कि वे भूख-हड़ताल न करें ।

मेरा शरीर-रूपी मापक-यंत्र मुझे यह भी बताता है कि इस देश में अब असली घी नहीं मिलता । वस्तुतः यह शरीर शुद्ध डालडा-परम्परा में पला है । और जिस प्रकार जल में पलनेवाली मछली के लिये हवा में रहना, तथा हवा में पलनेवाले मनुष्य के लिये जल में डूबे रहना घातक होता है, उसी प्रकार डालडा-परम्परा में पले मेरे इस शरीर के लिये असली घी विष के समान है । पिछले दिनों मैंने असली घी कहे जानेवाले प्रत्येक घी को खाया है और मुझ पर उसका कोई घातक प्रभाव नहीं पड़ा । मेरी मान्यता यह है कि भारत की वर्तमान पीढ़ी के जीवित रहने का प्रमाण यही है कि इस देश में से असली घी रूपी विष पूर्णतः समाप्त हो गया है । असली घी की बीमारी छूत की बीमारी है—एक से दूसरे को लगती है और अन्त में महामारी के रूप में परिणत हो जाती है । मैं भारत के छूत-रोग-निरोध निदेशालय को बधाई देता हूँ कि वह देसी घी की छूतहा बीमारी को समूल नष्ट करने में पूर्णतः सफल रहा है ।

मैं छूत की बीमारियों से बहुत डरता हूँ । मेरा इनके विषय में बहुत बुरा अनुभव है । इंग्लैंड के बीटलों ने योगियों को गुरु मानने की एक छूत की बीमारी फैला दी थी । यह महामारी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैली थी । कुछ थोड़े-से कीटाणु हमारे पारिवारिक जीवन में भी घुसपैठ कर गये थे । हम महेश योगी के पास तो नहीं जा सके, पर उनकी ब्रांच, अर्थात् अपने मुहल्ले के योगी के पास जा पहुँचे । मेरी पत्नी का रोग मुझसे कुछ अधिक तीव्र था । उसने उस ब्रांच में अपना एकाऊंट खोलने की इच्छा प्रकट कर दी ।

योगी ने कहा, “देवि ! दीक्षा लेने से पूर्व तुम अपने जीवन में आये तामसिक तत्त्वों को त्याग कर दो ।”

मेरी पत्नी ध्यान-मग्न हो गयी । पर शायद उस ध्यान ने उसे कोई

मार्ग नहीं सुझाया। कलियुग में वन्द आँखें कोई मार्ग नहीं सुझातीं। पर हमारी सरकार अभी भी वन्द आँखों से मार्ग खोजने की पुनीत भारतीय परम्परा में विश्वास रखती है। मेरी पत्नी ने आँखें खोल दीं। उसकी आँखों में उलझन थी। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। वह मार्ग खोजने के लिये इधर-उधर भटक रही थी। सहसा उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ी और स्थिर हो गयी। उसकी आँखों में प्रकाश समा गया। मुझे देखकर उसे ज्ञान प्राप्त हो गया। पति को देखकर ही पत्नी को ज्ञान प्राप्त होता है। इसीलिये सीता जी राम के साथ ही वन चली गई थीं।

मेरी पत्नी बोली, “योगीजी महाराज ! मेरे जीवन में तामसिक तत्त्व नहीं हैं। एक है तो वह मेरा पति है। मैं उसका त्याग करती हूँ।”

मैं हक्का-बक्का उस योगी को देखता रह गया। वह परिवार नियोजन का अधिकारी-सा लग रहा था। मैंने अपनी पत्नी का हाथ पकड़ा और भागा। इसलिये जब बीटल लोग इंग्लैंड लौट गये तो सबसे अधिक प्रसन्नता मुझे ही हुई।

अब मेरी पत्नी रोग-मुक्त और स्वस्थ है। मैं कभी-कभी उसे उस घटना की याद दिलाता हूँ तो वह बड़ा भोला अचरज अपने चेहरे पर ले आती है, “अच्छा ! मैंने ऐसा कहा था क्या ? तब मैं काफी बीमार रही हूँगी, नहीं तो मैं आत्महत्या की बात क्यों सोचती।”

हमारा ग्वाला भी कभी-कभी ऐसा ही भोला अचरज अपने चेहरे पर चिपका लेता है। बहुत मना करने पर भी वह दूध में नल के साफ पानी के स्थान पर यमुना जी का पवित्र गंदा पानी मिला लाता है। एक दिन वह दुष्ट अंधेरे-अंधेरे में ही, नींद का भरा हुआ, पानी के साथ-साथ, दूध के डोल में एक मेढक भी डाल लाया। मेढक यमुना जी का विरह नहीं सह सका और मर गया।

दूध में मरा हुआ मेढक देखकर मेरी पत्नी आग-बगूला (या बगूली—! व्याकरण की दृष्टि से जो भी ठीक हो) हो गई। “दूध में मेढक कहाँ से आ गया ?” उसने चीखकर पूछा। पर ग्वाले पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वह उसी भोले अन्दाज में सर खुजलाता रहा। “अब पता चला बीबीजी !” उसने कहा, “रात को जरूर यमुना जी में

वाढ़ आयी होगी । रात को डोल खुला रह गया था, सो वाढ़ का पानी उसमें चला गया । हमारी खटिया-धटिया भी सब वह गयी वीवीजी !”

मैंने पत्नी को वहाने से भीतर बुला लिया और बिना डाँटे-फटकारे ग्वाले को तुरन्त भेज दिया । नहीं तो कम्बख्त स्वयं को वाढ़-पीड़ित बतलाकर, दूध के पसे तो नकद माँगता ही, सहायता के लिए चन्दा भी माँगने लगता, तब ?



प्रेम और राजनीति

उन्होंने मुझे बुलाया और मैं चला गया। पर उनके घर पर बड़ी भीड़ थी। बैठने के लिये कोई स्थान न मिला, तो सोचा गृहस्वामी को बच्चे के मुंडन की वधाई देकर लौट चलूँ। व्यर्थ भीड़ बढ़ाने से क्या लाभ?

पर काम सरल नहीं था। वे नहीं चाहते थे कि मैं अपने कमरे में जाकर अपनी खुली खाट पर आराम से लेटकर सुख का अनुभव करूँ। उनकी इच्छा थी कि मैं उनके घर की भीड़ (जिसे वे 'शोभा' कह रहे थे) बढ़ाऊँ और मोटे गुदगुदे शरीरों के धक्के खा-खाकर, अपने भाग्य को सराहूँ और घुटन में जीवित रहने के लिए उचक-उचककर सांस लूँ और मुस्कराता रहूँ।

जब उन्होंने बहुत जिद की तो मुझे कहना पड़ा, "यहाँ भीड़ बहुत है, मेरे लिये जगह नहीं है।"

वे बहुत जोर से ठहाका मारकर हँसे, "अजी जगह की क्या कमी है। जगह बहुत है, आप ठहरनेवाले तो बनिए। आप तो हरजाई माशूक की तरह भागे जा रहे हैं।"

मैं लजा गया। उन्होंने किसी प्रसिद्ध धावक की उपमा दी होती तो मैं भागने में ही गर्व का अनुभव करता। पर उन्होंने मुझे हरजाई माशूक बना डाला, अतः लजा गया। सोचा, हो सकता है, मुझ जैसे विशेष अतिथियों के लिए किसी अन्य कमरे में प्रबन्ध किया गया हो। तभी तो

इतने आग्रह से ठहरने के लिए कह रहे हैं।

“कहाँ है जगह?” मैंने पूछ लिया।

“जगह हमारे दिल में है।” वे मुँह फाड़ कर हँसे।

मैं हतप्रभ हो गया। उन्होंने फिर शृंगारिक बात की थी। पर फिर मैंने उनके शरीर के आकार-प्रकार को देखा। लगा, वे गलत नहीं कह रहे थे। जिनके पेट में अन्न के भरे हुए गोदाम समा जाते थे और समय पाकर काले बाजार में विकते रहते थे, उनके दिल में इतनी जगह तो होगी ही कि मुझ जैसा एक दुबला-पतला आदमी आराम से बैठ सके। मैं कुछ निश्चिन्त हो गया।

पर थोड़ी ही देर में मेरी खोपड़ी में देश की आवास-समस्या समा गई। मुझे लगा कि इन गृहस्वामी के ही समान कितने ही लोग इस देश में हैं, जिनके दिल का आकार एक छोटी कोठरी से कम न होगा। और वे सारी कोठरियाँ खाली पड़ी हैं। क्या मेरा यह राष्ट्रीय कर्तव्य नहीं है कि मैं सरकार को इस स्थान की सूचना दूँ ताकि आवास-समस्या का कुछ थोड़ा-सा समाधान हो सके।

सोचा, एक बार उनसे पूछ लूँ, “वहाँ तक पहुँचने का मार्ग?”

पर पूछा नहीं। जिस मूड में वे थे, उसमें बड़ी सहजता से प्रेमियों के से अन्दाज में कह देते, “नयनों के द्वार से चले जाइये।”

मैं वैज्ञानिक सत्य में अटक गया था। आँखों के द्वारा एक कीटाणु भी भीतर नहीं जा सकता। और मैं तो मनुष्य हूँ, पतला-दुबला हुआ, तो क्या? आँखों के मार्ग से नहीं जाया जा सकता। कान के मार्ग से कनखजूरा जाता है, पर मैं सम्मानित अतिथि के स्थान पर कनखजूरा बनना नहीं चाहता था। नाक के मार्ग से... छि-छि ! गन्दी बात।

मैंने अपने राष्ट्रीय कर्तव्य को भुला दिया। सरकार को इस स्थान की सूचना देना, जोखिम का काम था। सरकार अवश्य दिल तक जाने का मार्ग पूछती। मैं क्या उत्तर देता? फिर आवास-समस्या हल होती न होती, मैं मुसीबत में फँस जाता।

फिर मैं इस समस्या के सांस्कृतिक और राजनीतिक पक्षों पर भी सोचने लगा था। साहित्य में आँखों के मार्ग से दिल तक पहुँचने के

पचासों नुस्खे हैं। पर कवि उच्छृंखल होता है, उसकी बात का क्या विश्वास। बात कह जायेगा और उसके परवर्ती प्रभावों की चर्चा ही नहीं करेगा। एक तुलसीदास अपवाद है। तुलसी ने स्पष्ट लिखा है कि राम, सीता की आँखों में समाये नहीं कि निमि को वहाँ से भागना पड़ा : “भए विलोचन चारु अचचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ।” हो गया न उत्पात का सूत्रपात।

राम को निमि का सीता जी के नयनों से निकलना बड़ा महंगा पड़ा। वह निमि का घर था और किसी को घर से निकालने का मतलब है—रेफ्यूजी प्राब्लम, शरणार्थी समस्या ! भारत का विभाजन हुआ तो शरणार्थी समस्या उठ खड़ी हुई। कितनी मार-काट हुई। तिब्बती शरणार्थी तिब्बत से निकल भारत में आए तो चीन के साथ भारत की ठन गई। मध्य एशिया की समस्या भी अरब-यहूदी समस्या नहीं है—केवल शरणार्थी समस्या।

राम भी शृङ्गार में भूल गए। राजनीतिक धरातल पर चिन्तन नहीं किया उन्होंने और परिणामवश निमि शरणार्थी हो गए। मेरा विचार है वहाँ से वे सीधे दंडकारण्य में चले गये और शूर्पणखा बनकर रहने लगे। राम-लक्ष्मण जब वहाँ पहुँचे तो फिर उत्पात हुआ और शूर्पणखा रूपी निमि रावण को बुला लाये। और फिर जो हुआ, वह सब को मालूम है।

भारत सरकार दंडकारण्य के शरणार्थी सम्बन्धी महत्त्व को समझती है। कदाचित् इसीलिये भारतीय विभाजन के शरणार्थियों को वहाँ बसाया जा रहा है।

मुझे दुनिया के प्रेमियों से यही शिकायत है कि उनका चिन्तन एकांगी होता है। प्रेम की बात सोचते हैं तो राजनीति की बात भूल जाते हैं। प्रेम के साथ राजनीति का सीधा सम्बन्ध है। मजनूँ लैला की आँखों से निकाला गया शरणार्थी था...वेचारा जंगल-जंगल की खाक छानता रहा। प्रेमियों की यह परम्परा ही बन गई है। जहाँ लड़के-लड़कियों ने प्यार किया, एक या दोनों घर से निकाल दिए जाते हैं।

मैंने गहस्वामी की आँखों में समाने या प्रेम करने का विचार छोड़ दिया । जानता हूँ कि विभाजन के समय जब शरणार्थी हुआ था तो कितनी दुर्दशा हुई थी । अपने इतिहास को दुहराना नहीं चाहता । अतः चुपचाप घर लौट आया ।

● ●

कर्तव्यनिष्ठ पड़ोसी

दूसरे दिन मैं दफ्तर गया तो साहब के सामने मेरी पेशी हुई ।

“तुम कल दफ्तर क्यों नहीं आये ?”

“जी मेरी पत्नी अस्वस्थ थी ।”

“भूठ मत बोलो ।” साहब ने मुझे बड़े आत्मविश्वास के साथ डांट दिया, “तुम्हारी पत्नी एकदम स्वस्थ थी । शर्मा जी ने हमें बताया है ।”

जब शर्मा जी ने बताया ही दिया था तो मैं क्या कहता । मुँह लटकाये चला आया ।

तीसरे ही दिन शर्मा जी मेरे घर आये । मैंने उनकी बात सुनी नहीं । बस नाराज हो गया, “आपने साहब से मेरी चुगली क्यों की थी ?”

“चुगली ! चुगली किसने की थी ?” शर्माजी ने मुझे उल्टे डांट दिया, “मैं सत्य-वचन में विश्वास करता हूँ । जाति का ब्राह्मण हूँ । भूठ नहीं बोलता । उस दिन भी सच बोला था । आप सच बोलने को चुगली करना कहते हैं ?”

मैं कंविन्स हो गया कि शर्माजी ने कोई गलत काम नहीं किया था । भला ब्राह्मण को सच बोलने से कैसे रोका जा सकता था । जैसे धर्म के नाम पर लोगों को नंगे रहने, सशस्त्र रहने और एक से अधिक पत्नियाँ रखने का अधिकार था, वैसे ही शर्माजी को धर्म के नाम पर साहब के

पास चुगली करने का भी पूरा अधिकार था। धर्म तो इस देश में 'वीटो' है—उसके सामने न कोई तर्क चलता है, न नियम, न कानून !

“कहिये ! कैसे आना हुआ ?” मैंने शान्त मन से पूछा।

“देखिये।” वे बोले, कई काम होते हैं, जिनको एक कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता।”

“ठीक है।” मैंने कहा।

“फिर, यदि हो सके तो पड़ोसी का भला भी करना चाहिए।”

“ठीक, मैंने फिर कहा।

“आप दोनों सिद्धान्तों से सहमत हैं।” वे बोले, “अब व्यावहारिक घरातल पर आइये।”

“आ जाइये।” मैंने कहा।

“तो आप झूठ बोल सकते हैं।” वे बोले, “मैं नहीं बोल सकता। अर्थात् एक काम आप कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता। फिर, मैं आपका पड़ोसी हूँ। यदि आपसे मेरा भला हो सके तो आपको वह करना चाहिए। आप बिलकुल सहमत हैं ?”

“एकदम !” मैंने कहा।

“तो आज आप दफ्तर में यह कह दीजियेगा कि मेरे बच्चे की तबीयत ठीक नहीं है। ठीक है ?” उन्होंने पूछा।

मैं उनके तर्कों और अपने सिद्धान्तों में बँधा उनके लिये दफ्तर में झूठ बोलने को मजबूर हो गया था। जी मैं यह भी आया था कि मैं भी बदला लेने के लिये साहब से उनकी चुगली कर दूँ—पर क्या लाभ ? झूठ तो मैंने कहा था, उन्होंने नहीं। तब भी मैं ही फँसता।

एक बार साहब ने दफ्तर में मुझे डांट दिया। उस दिन शाम को मैं जब टहलने के लिए बाहर निकला तो पता चला कि मुहल्ले के हर आदमी को यह पता था कि मुझे आज दफ्तर में डांट पड़ी थी। मैं बहुत भेंपा, पर समझ गया कि यह शर्माजी की करतूत है। वे पड़ोस में ही रहते हैं। जल्दी-जल्दी आकर अपने धार्मिक कर्तव्य के समान सब को बता गये हैं।

मुझे क्रोध तो बहुत आया, पर सोचा उनसे कुछ कहा तो वे कह देंगे

कि वे ब्राह्मण हैं सत्य अवश्य बोलेंगे, यदि मुझे दफ्तर में डाँट पड़ी थी, तो उन्हें पूरा अधिकार था कि वे लोगों से कहते फिरें। पर फिर भी मैं नाराजगी जताने के लिये उनके घर चला गया।

मैंने कहा, “शर्माजी ! मैं आपको सत्य बोलने के ब्रह्म-अधिकार से नहीं रोकता, किन्तु आप भी कुछ सिद्धान्त याद रखिये। पहला सिद्धान्त : यदि हो सके तो अपने पड़ोसी का भला कीजिये। दूसरा सिद्धान्त : मैं दफ्तर की बात मुहल्ले में और मुहल्ले की बात दफ्तर में नहीं करता।”

शर्माजी ने कड़वा-सा मुँह बनाया और बोले, “यदि इन सिद्धान्तों से मूल सिद्धान्त—ब्राह्मण को सत्य बोलना चाहिए—भंग होता तो?”

मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं था। यह तो सीधा-सीदा संवैधानिक प्रश्न था। किसी सामान्य अधिकार से मौलिक अधिकार (फण्डामेंटल राइट्स) अतिक्रमित हों तो ?—निश्चित रूप से, मौलिक अधिकार भंग नहीं होने चाहिए।

पर सप्ताह भी नहीं बीता था कि साहब ने शर्माजी को खूब डाँटा, खूब डाँटा और अन्त में कह दिया, “शर्मा, तुम एकदम गधे हो।”

मैंने भी अपना पवित्र कर्तव्य निभाया। दफ्तर से कुछ जल्दी उठ आया और जब तक शर्माजी घर पहुँचे, सारे मुहल्ले को मालूम था कि साहब ने उन्हें आज ‘गधा’ कहा है।

शर्माजी भागे हुए मेरे पास आये, “यह आपने क्या किया?”

“क्या साहब ने आपको गधा नहीं कहा था?” मैंने पूछा।

“कहा था”, वे बोले, “पर आपका सिद्धान्त है कि आप दफ्तर की बात मुहल्ले में और मुहल्ले की बात दफ्तर में नहीं करते। यह मेरा सिद्धान्त नहीं है। मैंने अपना सिद्धान्त नहीं छोड़ा था, पर आप अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जा रहे हैं।”

उनका तर्क ठीक था। मैं हतप्रभ होकर उनको देखता रहा।

उन्होंने दूसरा प्रहार किया, “और सच बोलना भी मेरा सिद्धान्त है, आपका नहीं। आप सत्य को छिपा भी सकते थे और झूठ भी बोल सकते थे। और पड़ोसी के नाते आपको यही करना चाहिए था।”

मैं और भी हतप्रभ हो गया था।

शर्माजी साहब से बहुत डरते हैं। मैं अनावश्यक रूप से नहीं डरता। इसलिए वे साहब की खुशामद करते हैं, मैं नहीं करता। होता यह है कि वे साहब को खुश रखने के लिए कभी देर तक दफ्तर में बैठे रहते हैं। कभी कोई चीज पहुँचाने उनके घर चले जाते हैं। कभी उसके बच्चों की फीस जमा कराने उनके स्कूल चले जाते हैं। इन सब में उनका काफी समय लग जाता है और सारी छुट्टियाँ भी साहब की नजर हो जाती हैं। वे इसे अपनी सैद्धान्तिक शब्दावली में 'स्वामी-भक्ति' कहते हैं, जो उनके अनुसार प्रत्येक ब्राह्मण का कर्तव्य है।

साहब कहीं बाहर जानेवाले थे और शर्माजी पिछले तीन-चार दिनों से साहब के जाने की व्यवस्था में बुरी तरह से व्यस्त थे। साहब के बाहर जानेवाली शाम को शर्माजी ने कहा, "स्टेशन चलो, तुम्हें साहब से रामदास के केस की फाइल लेनी है।"

मुझे साहब पर बहुत क्रोध आया। आपको यदि वह फाइल मुझे देनी थी तो दफ्तर में दे देते। शर्माजी के हाथ ही मेरे घर भिजवा देते। यह क्या तमाशा है कि वे मुझे स्टेशन पर बुलाकर फाइल देंगे। जब मैं उनकी चापलूसी करने को तैयार नहीं, तो वे इस तरह से मुझे बाध्य करेंगे कि मैं उनकी विदाई देने स्टेशन पर जाऊँ।

पर फाइल तो लेनी ही थी। मैं बाध्य होकर शर्माजी के साथ चल पड़ा।

साहब मुझे देखकर हैरान रह गए, "अरे तुम?"

"जी आपसे रामदास के केसवाली फाइल लेनी थी।" मैंने अपने आक्रोश को बड़ी कठिनाई से दबाया।

"फाइल लेकर मैं क्या स्टेशन पर आया हूँ?" साहब कुछ नाराजगी की हँसी हँसे, "लेनी थी तो दफ्तर में ले लेते।"

साहब चले गये और मैं शर्माजी पर झपटा, "आपने झूठ क्यों कहा?"

"झूठ कहाँ कहा था?" शर्माजी बोले, "मैंने सोचा कि तुम्हें वह फाइल लेनी होगी, इसलिए प्रस्ताव रखा था कि चलकर स्टेशन पर ले लो। मैंने यह तो कहा ही नहीं था कि साहब ने तुम्हें बुलाया है।"

शर्माजी अपने युधिष्ठिरीय सत्य से साफ बचकर निकल गये थे ।
व ठीक कह रहे थे, उन्होंने झूठ नहीं कहा था ।

मैंने कहा, “शर्माजी ! सच-सच बताइए, आपने मुझे परेशान क्यों किया ?”

“तो भाई सच-सच ही बताए देता हूँ ।” वे बोले, “मैं अपने इस बुढ़ापे में ही अपनी प्रमोशन के लिए अपनी हर छुट्टी साहब के पीछे तबाह कर देता हूँ और तुम मजे से घर पर पड़े रहते हो । मेरे मन में तुम्हारा आलस्य देखकर आग-सी जलने लगती है ।” वे क्षण भर रुक-कर बोले, “मेरा सिद्धान्त है कि यदि हो सके तो मुझे अपने पड़ोसी का भला करना चाहिए । और तुम्हारा भला इसी में है कि तुम एक्टिव बन-कर साहब की चापलूसी करो ।”

“एक्टिव बनकर साहब की चापलूसी से क्या होगा शर्माजी !” मैंने कहा, “यही तो कि मैं भी रात-रात देर से घर आकर परिवार की सुख-शान्ति भंग करूँगा । आपके समान दूर के नाम पर जंगलों-पहाड़ों में भटककर, कुछ रुपयों के लिए अपना स्वास्थ्य बरबाद करूँगा । मुझे ज्यादा की इच्छा नहीं है ।”

“युवक में सन्तोष की भावना अच्छी नहीं होती ।” वे बोले, “यह संन्यासी वृत्ति है और देश और राष्ट्र के लिए बड़ी घातक है ।”

“जो भी है, आप मेरी भलाई का विचार छोड़ दीजिए ।” मैंने नाराज होकर कहा ।

“यह सम्भव नहीं है मित्र ।” वे बोले, “इन बूढ़ी हड्डियों से अब अपने सिद्धान्त नहीं छोड़े जाते । हम तो तुम्हारी भलाई करते ही जायेंगे ।”

शर्माजी से मगज मारना बेकार था । मैं समझ चुका था कि भला पड़ोसी वह होता है, जो न स्वयं चैन से बैठे, न दूसरे को परेशान करना छोड़े ।



अन्तरंग-परिचय

इधर हिन्दी साहित्य में एक नयी विधा का आविष्कार हुआ है—अन्तरंग-परिचय लिखने का। यह विधा चल भी खूब पड़ी है और मुझे इस प्रचलन में से एक बहुत बड़े षड्यंत्र की गंध आ रही है।

हिन्दीवाले बहुत षड्यंत्रकारी हो गये हैं। पहले दो-एक नयी शैलियों में लिख लेंगे और फिर नये शैलीकारों पर थीसिस लिखाकर स्वयं को अमर करवा लेंगे। किसी की जीवनी लिख दी और जीवनीकारों पर थीसिस लिखवाकर अमर हो गये। यात्रा लिखी, संस्मरण लिखे, चुटकुले लिखे और यात्राकारों, संस्मरणकारों, चुटकुलाकारों पर थीसिस लिखवाकर अमर हो गये। अब तक इसी ढंग से हजारों हिन्दीवाले अमर हो चुके हैं। पर इससे अमरलोक की जनसंख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई है, क्योंकि अमर होने का अर्थ है किसी मोटी-सी पुस्तक में अपना नाम लिखवाना और उसे अलमारी में संभालकर रख देना। इस प्रकार बनिए का उधार लेकर भाग जानेवाला प्रत्येक व्यक्ति अमर हो गया है, क्योंकि उसका नाम भी मोटी वही में लिखकर, वही को अलमारी में रख दिया जाता है।

अब लोग अन्तरंग-परिचय लिखकर, अन्तरंग-परिचयकारों के रूप में अमर होने का षड्यंत्र कर रहे हैं। कुछ लोग तो शेष सब कुछ लिखना-पढ़ना छोड़, अन्तरंग-परिचयों की ही रोटी खा रहे हैं। वैसे भी जो लिखना

बन्द कर देता है, वह अन्तरंग-परिचय ही लिखने लगता है।

मैंने भी (सरल काम समझकर) एक बड़े आदमी का अन्तरंग-परिचय लिख दिया। वह एक पत्रिका में प्रकाशित भी हो गया, पर वह बड़ा आदमी बड़ा दुष्ट निकला। उसने एक पत्र उस अन्तरंग-परिचय के विरुद्ध उसी पत्रिका के अगले अंक में छपवा दिया और लिखित रूप में घोषणा कर दी कि वह मुझे एकदम नहीं जानता और मैंने उस परिचय में सब कुछ गलत लिखा है। उसने सम्पादक को भी ऐसी नादानी न दुहराने की सलाह दी थी।

अन्तरंग-परिचय-लेखन के इतिहास में ऐसी दुर्घटना पहली बार हुई थी और वह भी मेरे साथ ही हुई थी। मैं घबरा गया। आखिर यह मेरे साथ ही क्यों हुआ? मैं कहाँ सतर्क नहीं रहा—कहाँ चूका। पता चला कि मैंने अन्तरंग-परिचय-लेखन-विज्ञान के मूलभूत सिद्धांत की उपेक्षा कर दी थी। वस्तुतः अन्तरंग-परिचय सदा ही सम्बन्धित बड़े आदमी के स्वर्गीय हो जाने पर प्रकाशित करवाना चाहिए। तब वह कभी भी विरोधपत्र प्रकाशित करवाने की दुष्टता नहीं कर सकेगा।

मैंने इस मूलभूत सत्य को पहचान लेने के पश्चात् से अपना तरीका बदल दिया है। अब मैंने प्रकाशन का कार्यक्रम स्थगित कर लेखन का ही कार्य पकड़ रखा है। सबसे पहले मैंने देश के सारे बड़े आदमियों की सूची तैयार की है। फिर उनका वर्गीकरण आयु की दृष्टि से किया है। अस्सी वर्ष पार कर चुके बड़े आदमियों का एक वर्ग है, पचहत्तर तक का दूसरा, सत्तर तक का तीसरा और इस प्रकार पाँच-पाँच वर्ष नीचे तक का वर्ग बनाया है।

दूसरा कोण उनका स्वास्थ्य है। मैंने पता लगाया है कि किस बड़े आदमी को कौन-सी बीमारी है और वह कितनी घातक है। तीसरा वर्ग अन्य कारणों का है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग में कुछ पोआइंट रखे हैं। सारे वर्गों के पोआइंट जोड़कर हिसाब लगाया है कि किसके स्वर्गीय होने की कितनी सम्भावना है। उसी सम्भावना के अनुसार उनकी एक वरिष्ठता सूची बनाई है। उसी सूची के अनुरूप, वरिष्ठता के नियम का सख्ती से पालन करते हुए मैंने देश के उन बड़े आदमियों के अन्तरंग-परिचय

लिखने आरम्भ कर दिये थे । अब तक, आगामी पाँच वर्षों में स्वर्गीय हो सकने की सम्भावनाओंवाले प्रत्येक बड़े आदमी का अन्तरंग-परिचय मैं लिख चुका हूँ और प्रतीक्षा में हूँ कि कब किसी के स्वर्गीय होने की सूचना आये और मैं उसका अन्तरंग-परिचय प्रकाशनार्थ भेजूं ।

यह सारा वखेड़ा मुझे केवल उस दुष्ट बड़े आदमी के कारण करना पड़ रहा है, जिसने मेरे पहले अन्तरंग-परिचय पर अपना विरोध-पत्र छपवाया था । यदि उसने वैसी दुष्टता न की होती तो मुझे पंचवर्षीय योजनाओं में काम क्यों करना पड़ता और फिर इतना श्रेष्ठ साहित्य, जो मैंने लिखकर रख छोड़ा है, लोगों की मृत्यु के समाचार तक रोक कर, हिन्दी साहित्य की अपरिहार्य हानि क्यों करनी पड़ती ।

मेरा तो अब भी प्रस्ताव है कि देश का जो-जो बड़ा आदमी मुझे लिखित रूप में यह आश्वासन दे देगा कि वह मेरे लिखे हुए अन्तरंग-परिचय के विरुद्ध कभी कोई पत्र नहीं छपवायेगा, न ही कोई वक्तव्य देगा, मैं उसका अन्तरंग-परिचय उसके जीवित रहते हुये ही प्रकाशित करवाकर उसे अमर कर दूँगा !

अब तक के लिखे गये अन्तरंग-परिचयों का एक सामान्य मॉडल मैं यहाँ पाठकों, अध्यापकों, शोधकर्ताओं, भविष्य में अन्तरंग-परिचय लिखने-वालों की सुविधा के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

सबसे पहली सावधानी हमें उस व्यक्ति के सम्बोधन के विषय में बरतनी चाहिए । यदि उसके वास्तविक नाम से ही उसकी चर्चा की जायेगी तो न वह बड़ा आदमी लगेगा और न आपका अन्तरंग सखा या कुछ और । उसके लिये आवश्यक है कि महात्माजी, पण्डितजी, भैया साब, ददा, बाबा, बापू, काका, भारतीय आत्मा, गुरुदेव इत्यादि सम्बोधन का प्रयोग किया जाये । इनमें से जहाँ महात्माजी, पण्डितजी इत्यादि से उनकी महानता प्रकट होती है, वहाँ रिश्तासूचक सम्बोधनों से आपकी अन्तरंगता ।

दूसरी बात उनके वस्त्रों के सम्बन्ध में है । उस व्यक्ति के वस्त्रों को शेष लोगों से अवश्य ही भिन्न होना चाहिए । और सारी पोशाक में कोई-न-कोई एक वस्त्र ऐसा होना चाहिए जो उनके स्वर्गीय होने के

पश्चात् उनके नाम से प्रचलित हो सके ।

उनकी विचित्र तथा अनौपचारिक आदतों के विषय में भी एक अध्याय अवश्य होना चाहिये । उनकी उन्मुक्त, ठहाकेदार हँसी, और उज्ज्वल दाँतों का उल्लेख अवश्य होना चाहिये ।

उनकी देशभक्ति और त्याग का वर्णन, अनिवार्य तत्त्व है । जैसे वे अपने देश की चप्पा-चप्पा भूमि से प्यार करते थे । वह तो उनका वश नहीं चला, नहीं तो वे हिमालय से कन्याकुमारी तक और आसाम से गुजरात तक को अपनी निजी जायदाद के रूप में, सुप्रीम कोर्ट में अपने नाम पर लिखवा लेते । इतना प्रेम था उन्हें अपने देश से । त्यागी इतने थे कि किसी से लड़ पड़ते तो उससे बात-चीत त्याग देते, कोई कपड़ा पुराना होकर घिस जाता तो उसे फटने से एक दिन पूर्व ही त्याग देते । वे महान त्यागी थे ।

और सब से अन्त में एक अध्याय उन बातों के सम्बन्ध में होना चाहिये, जो बातें उन्होंने एकदम एकांत में केवल आपसे कहीं थीं । उसका साक्षी सिवाय आपके और कोई न हो । जैसे उन्होंने कभी आपको बताया हो कि तीस वर्ष पूर्व सदर बाजार के नूक्कड़ पर जो गोल-गप्पे उन्होंने खाये थे, वैसे फिर कभी नहीं खाये । अथवा यह कहा हो कि दुनियाँ में प्रत्येक व्यक्ति उन्हें बड़ा खुश समझता है, पर उनका दिल बचपन में माँ की गोद से गिरकर एक बार टूट गया था—यह कोई नहीं जानता । वे उसी टूटे दिल के साथ सारी आयु देश की सेवा करते रहे हैं । 'टूटे दिल से देश की सेवा करना' में श्लेष है । इसका दूसरा अर्थ है, न चाहते हुए भी, अपनी इच्छा के विरुद्ध, अनमनेपन से देश की सेवा । यह प्रत्येक नेता की मजबूरी है ।

हाँ, परिशिष्ट के रूप में उनके हास्य-विनोदप्रियता के विषय में भी दो-एक पंक्तियाँ लिख दें । विशेषकर महिला-सभाओं तथा महिला-महाविद्यालयों में जाकर प्रत्येक बड़ा आदमी महाविनोदी हो जाता है !

पुनश्चः—यदि आप विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित अन्तरंग-परिचय-साहित्य की इन सूत्रों के आधार पर आलोचना करें तो इन सूत्रों के आविष्कारक को न भूलें और यह भी न भूलें कि इन पर मेरा कापीराइट है !

आधुनिक व्यक्ति की संहिता

डा० चाँदकिरण धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर रहे थे। हाथ में एक रजिस्टर और चार-पाँच मोटी-मोटी किताबें थीं। इन किताबों का उनके विषय के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था और न ही क्लास लेते हुए उनको पढ़ा जा सकता था—पर आदत थी उनकी। जब भी वे क्लास में जाते, ऐसी-ऐसी दो-चार मोटी-मोटी किताबें अपने साथ जरूर ले जाया करते।

सीढ़ियाँ उतरकर वे दायीं ओर मुड़े और धीरे-धीरे चलते हुए स्टाफ-रूम के सामने आ खड़े हुए। स्टाफरूम के दरवाजे पर एक मोटी-सी चिक भूल रही थी। आसपास कोई चपरासी भी नहीं था। चिक उठाये कौन ? डा० चाँदकिरण का विश्वास था कि उनका काम केवल पढ़ाना है और पढ़ाई के अतिरिक्त कोई काम उनकी ड्यूटी के क्षेत्र में नहीं आता। और चिक उठाने जैसा काम तो बहुत ही घटिया काम था। वह उनकी डिगनिटी से नीचे का काम है—वे अँग्रेजी में सोचते।

कभी-कभी संयोग से यदि कोई चपरासी आसपास होता, तो चिक उठा देता या फिर डा० चाँदकिरण खड़े रहते। कोई और व्यक्ति आकर भीतर जाने के लिये चिक उठाता, तो वे भी बड़े शहीदानी अन्दाज से प्रवेश कर जाते, जैसे उस व्यक्ति पर कोई एहसान कर रहे हों। या फिर चौकन्ने होकर वे इधर-उधर देखते और किसी को समीप न देख-

कर चुपके से चिक उठाकर भीतर घुस जाते वहरहाल किसी के सामने उन्होंने स्वयं कभी चिक नहीं उठायी थी ।

पीछे से आते हुए डा० वासुदेव ने भीतर जाने के लिए चिक उठायी । डा० चाँदकिरण को खड़े देखकर उन्होंने मार्ग दिया, “आइए डाक्टर साहब ।”

डा० चाँदकिरण ने एक उपेक्षा-भरी नजर डा० वासुदेव पर डाली और किताबें सम्हालते हुए स्टाफरूम में प्रविष्ट हुए ।

उन्होंने किताबें एक कुरसी पर रखीं और दूसरी कुरसी पर अधलेटे-से हो गये । सीढ़ियाँ उतरने का काफी स्ट्रेन पड़ा था उन पर । फिर उन्होंने थोड़ा-सा उठकर बगल की कुरसी पर पड़ी पुस्तकों को उलटा-पलटा और एक मोटी-सी किताब लेकर बैठ गये ।

पीरियड खत्म हो गया था और एक-एककर सारे प्राध्यापक स्टाफरूम में आ रहे थे । स्टाफरूम भिन्न-भिन्न आवाजों से भरता जा रहा था । चौधरी साहब आकर डा० चाँदकिरण की बगलवाली कुरसी पर बैठ गये ।

“रामप्रसाद ।” उन्होंने स्टाफरूम के चपरासी को आवाज दी ।

डा० चाँदकिरण के मुख पर वितृष्णा की रेखायें उभरीं, ‘ओ-हट्टो’ और वे चौधरी साहब पर क्रोध-भरी एक नजर डालकर दूर किनारेवाली कुरसी पर बैठ गये ।

चौधरी साहब नये-नये आये थे कालेज में । अभी उनका डा० चाँदकिरण से विशेष परिचय नहीं था । वे इस व्यवहार से चौखला-से गये । भौचक से डा० चाँदकिरण की ओर देखते रहे; शायद उनकी नाराजगी का कारण जानने के लिए । पर डा० चाँदकिरण पूरी सावधानी से अपनी पुस्तक पढ़ने में लगे हुये थे । जब चौधरी साहब को कुछ समझ में न आया, तो उन्होंने दूसरी बार पुकारा, “रामप्रसाद भट्ट, एक गिलास पानी देना ?”

चपरासी ने चौधरी साहब को पानी पिलाया और गिलास को वापस सुराही के पास रखकर डा० चाँदकिरण के पास आया, “साहब, प्रिंसिपल साहब ने वह लिस्ट माँगी है ।”

“लिस्ट ! द्विच वन ?” डा० चाँदकिरण चौंके और विगड़ खड़े हुए,
“आइ डोण्ट नो । देयर आर सो मेनी आफ देम ।”

चपरासी कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, और फिर बिना कुछ समझे लौट गया ।

डा० चाँदकिरण ने फिर किताब में मन लगाया, पर उनका मूड खराब हो चुका था । किताब में मन न लगा । वे झल्लाकर उठ खड़े हुये । सारी किताबें उठायीं और लाँकर खोलकर उसमें भोंक दीं । लाँकर बन्द किया और स्टाफरूम के दरवाजे की ओर चल दिये । दरवाजे पर जाकर चिक के पास रुक गये । क्षण भर कुछ सोचते रहे और फिर अचानक लौटकर वापस अपनी कुरसी पर आकर बैठ गये । फिर उठे और लाँकर में से फिर वही पुस्तक निकालकर पढ़ने लगे ।

अभी पुस्तक खोली ही थी कि चपरासी फिर आ गया, “साहब ! एक लड़की आपको बाहर याद कर रही है ।”

“ओह ।” डा० चाँदकिरण के मुख पर अनन्त यातना के चिह्न उभरे,
“आइ एम फेड अप विद दिस ।”

उन्होंने किताब पटकी और उठ खड़े हुये । दो-चार डग भरकर लौट पड़े ।

“उससे कह दो कि मैं नहीं हूँ ।” वे चपरासी से बोले ।

उन्होंने बैठकर फिर पढ़ने की कोशिश की मगर अब जी एकदम उखड़ चुका था । उन्होंने उठकर अपने लाँकर में से अपनी वे सारी भारी-भरकम किताबें निकाली और स्टाफरूम से बाहर निकल आये ।

डा० चाँदकिरण के घर पहुँचने की देर थी कि श्रीमती चाँदकिरण खालिस घरेलू ढंग से झपट पड़ीं, “कहाँ इतनी देर कर दी तुमने ?”

डा० चाँदकिरण के माथे के बलों में एक और बल की वृद्धि हुई, “यू आर स्टिल प्रिमिटिव इन योर मैनर्स, डार्लिंग ।”

श्रीमती चाँदकिरण और कोई भी बात सह सकती थीं, पर यह नहीं सह सकती थीं कि आधुनिकता की दौड़ में कोई उन्हें एक भी कदम पीछे माने । और अपने पति के मुख से तो वे ऐसी बात एकदम नहीं सुन सकती थीं ।

जनपथ के कॉटेज इम्पोरियम में काम करनेवाली मिसेज समता चाँदकिरण यदि मॉडर्न नहीं हैं, तो इस दुनिया में कोई भी मॉडर्न नहीं है।

“ठीक है, डार्लिंग। पर तुम ही सोचो, मेजर और मिसेज कुलकर्णी हमारे लिये बेट कर रहे होंगे।”

“ओ. के.।” डा० चाँदकिरण जरा तेज आवाज में बोले, “मैं नहीं जानता था कि तुम भी एवरेज लोगों की तरह अपनी एक्वाइन्टमेण्ट्स की इतनी केयर करती हो।”

डा० चाँदकिरण ने फिर एक बार उनकी आधुनिकता पर आघात किया था। एक बार तो उनके जी में आया कि जोर से चीख पड़ें, पर फिर धीरे से बोलीं, “पर तुम खुद सोचो, मेजर कुलकर्णी आर्मी में है। वे लोग पंचुअल होते हैं।”

“हेल विद दोज !” डा० चाँदकिरण अप्रसन्न थे, “हम इण्टेलेक्चुअल लोग हैं। ऐसे लोगों से मिलने का हमारा कोई मतलब ही नहीं है।”

“मैं कहाँ मिलना चाहती हूँ।” श्रीमती चाँदकिरण ने सफाई दी, “पर अपना काम तो करवाना ही है न?”

“ओ. के. ... ओ. के.।” डा० चाँदकिरण रेडियो के पास जाकर बैठ गये।

उन्होंने रेडियो ऑन किया। किसी स्टेशन से फिल्मी गाने आ रहे थे।

“ओह, ब्लडी इण्डियन सांग्स।” डा० चाँदकिरण ने झुल्लाकर सुई घुमा दी। एक जगह सुई थम गयी। किसी अपरिचित भाषा में एक नारी स्वर कुछ कह रहा था। डा० चाँदकिरण बड़े ध्यान से उसे सुनते रहे...

“डार्लिंग, तुम फिर क्या ले बैठे?” श्रीमती चाँदकिरण ने फिर टोका, “कुछ समझ में भी तो...”

“अपने दिमाग से एवरेज लोगों की सड़ी कम्प्लेक्स निकाल दो कि हर चीज का समझ में आना जरूरी है।” डा० चाँदकिरण झमककर बोले।

श्रीमती चाँदकिरण समझ गयीं कि इस प्रकार की बातें होती रहीं, तो वे मेजर कुलकर्णी के घर कभी न जायेंगे। उन्हें अपने हाल पर

छोड़कर वे तैयार होने में लग गयीं। तैयार होकर जब वे डा० चाँद-किरण के सामने आकर खड़ी हुई, तो वे बिना किसी हीले-हवाले के चुपचाप साथ चल दिये।

मेजर कुलकर्णी तथा मिसेज कुलकर्णी बाहर लॉन में बैठे हुये इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

“हेलो।”

“हेलो।”

“आइये।” मेजर कुलकर्णी ने आगे बढ़कर डा० चाँदकिरण से हाथ मिलाया। डा० चाँदकिरण ने जल्दी से हाथ छुड़ाया और दूसरे हाथ से उसे सहलाने लगे।

“आईम सारी।”

मेजर कुलकर्णी ने उन्हें हाथ सहलाते हुए देख लिया था।

“आप तो विलकुल एवरेज आदमी की तरह हाथ मिलाते हैं, मेजर कुलकर्णी।” डा० चाँदकिरण ने शिकायत की।

मेजर को बात कहीं खटक गयी, पर कुछ बोले नहीं।

“हाउ स्वीट आफ यू, समता ! टु कम।” मिसिज कुलकर्णी बोलीं।

“मैं तो भूल ही गयी थी एकदम।” श्रीमती चाँदकिरण बोलीं, “पर इन्होंने याद दिला दिया। ही वाज डाइंग टु कम हियर। ही लाइक्स यू पीपल सो मच।”

“वेरी काइण्ड आफ यू।” मेजर कुलकर्णी अपना मूड ठीक करके बोले, “मैंने सुना है कि, डाक्टर साहब, आप किसी से ज्यादा मिलते-जुलते ही नहीं।”

“अब देखिये न, मेजर साहब”, डा० चाँदकिरण बड़े विवश स्वर में बोले, “दिल्ली में हैं ही कितने लोग जिनसे मिला जा सकता है। सब एवरेज लोग हैं—मोस्टली इंडियोटिक्स।”

“क्यों ?” मेजर कुलकर्णी ने आश्चर्य दिखाया, “यहाँ तो यूनिवर्सिटी है। ए क्राउड आफ इण्टेलिक्चुअल्स। एक से एक बढ़कर यहीं बैठा है।”

“ओह ! सब ऐसे ही हैं।” डा० चाँदकिरण को मेजर की बात पसन्द नहीं आयी थी, “और वेसे भी अपना ढंग है। मॉडर्न आदमी कहाँ

किसी से मिलता-जुलता है। अगर हम किसी से मिलना-जुलना नहीं चाहते, तो लोगों को आखिर एतराज क्या है ? वस, नहीं मिलते...।”

“राइट, राइट।” मेजर कुलकर्णी बोले, “आप ठीक कहते हैं। मॉडर्न आदमी वह नहीं है जो किसी से मिल न सकता हो, मॉडर्न आदमी तो वह है जो किसी से मिलना न चाहता हो।”

“दैट्स ह्वाट आइ मीन।” डा० चाँदकिरण प्रसन्न हो गये।

थोड़ी देर तक सभी चुप रहे, जैसे कोई सामान्य विषय ही न मिल रहा हो। डा० चाँदकिरण सर्वथा सन्तुष्ट थे। वे अपने मिलने-जुलने वालों के बीच इस प्रकार घण्टों चुपचाप बैठे रह सकते थे। उन्हें इसमें अशिष्टता की कोई गन्ध नहीं आती थी। पर मेजर कुलकर्णी को यह मौन खल रहा था। उनके घर कोई अतिथि आये और वे इस प्रकार चुपचाप बैठे रहें, यह बात उन्हें अच्छी न लगी। पर पता नहीं डा० चाँदकिरण किस विषय पर बात करना पसन्द करें। कहीं ऐसा न हो कि वे कोई बात आरम्भ करें और डा० चाँदकिरण ‘प्रिमिटिव’ अथवा ‘एवरेज’ आदमियों का विषय घोषित कर दें।

“आपके डा० नागराज मिले थे एक दिन।” आखिर मेजर कुलकर्णी ने एक विषय खोज निकाला।

“हू ? हू इज डा० नागराज ?” डा० चाँदकिरण के मुख पर अपरिचित रेखाओं की भरमार थी।

“आप डा० नागराज को नहीं जानते ?” मेजर के स्वर में आश्चर्य था, “भई, आप के कालेज में आप ही के डिपार्टमेण्ट में हैं।”

“अच्छा !” डा० चाँदकिरण हँसे, “मेरे डिपार्टमेण्ट में हैं और मैं ही नहीं जानता।” वे तनिक ठहरे, “यू सी, देयर आर लाट्स आफ पीपल। आखिर किसे-किसे याद रखें।”

“वेल।” मेजर ने कहा, “मैं नहीं जानता था कि आप के यहाँ लोग इतने हैं। वाई द वे, कितने लेक्चरर हैं आपके डिपार्टमेण्ट में।”

“वी आर सिक्स।” डा० चाँदकिरण बोले।

मेजर कुलकर्णी मौन हो गये। उन्होंने बड़ी मुश्किल से एक विषय खोज निकाला था, पर वह भी समाप्त हो गया था। मिसेज कुलकर्णी

ने उन्हें पहले से ही डा० चाँदकिरण की नाजुकमिजाजी के विषय में बता दिया था । पर उन्हें यह नहीं मालूम था कि अपने विभाग के छह लोगों को याद रखने का बोझ भी उनका मिजाज न सह पायेगा । वैसे यह खतरा भी था कि ज्यादा लोगों को जाननेवाला व्यक्ति 'एवरेज' व्यक्ति घोषित किया जा सकता है ।

थोड़ी देर में डा० चाँदकिरण बैठे-बैठे थक गये । उन्होंने चाय इत्यादि पीने से इनकार किया और अनुमति चाही । मेजर कुलकर्णी को इतनी ही देर में घुटन होने लगी थी ।

उन्होंने रोका नहीं ।

“ह्वाट ए टेरिबल बोर ।” बाहर निकलकर डा० चाँदकिरण ने मेजर के विषय में राय दी ।

“वह तो ठीक है, डार्लिंग ।” मिसेज चाँदकिरण घबरायी हुई थीं, “पर यदि मेजर फिर नागराज को मिलें और इस बातचीत की चर्चा हो, तो ?”

“तो क्या ?”

“नागराज आपसे पूछेंगे इस विषय में ।” मिसेज चाँदकिरण ने अपनी आशंका प्रकट की ।

“आइ विल टेल हिम ।” डा० चाँदकिरण बोले, “कि मैं मेजर कुलकर्णी नाम के किसी व्यक्ति को नहीं जानता ।”

“दैट्स ऑलराइट ।”

और वे दोनों निश्चिन्त हो गये ।



अंगूरों की बेल

जिस मकान की ऊपरी मंजिल में मैं रहता हूँ, उसकी निचली मंजिल में, पिछवाड़े की ओर एक अंगूर की बेल है और उस बेल ने मेरे मन में पाप जगा दिया है।

जब मैं यहाँ आया था तो अच्छा-खासा धार्मिक व्यक्ति था। बुरे विचारों से वैसे ही दूर रहता था जैसे कोई भी धार्मिक व्यक्ति रह सकता है। यह ज्ञान मुझे तब भी था कि शराब को अंगूर की बेली कहते हैं और अंगूरों ने शराब बनकर लाखों-करोड़ों से पाप करवाया है। पर अंगूर अपने आपमें बुरी चीज नहीं लगती थी मुझे। सब्जी मंडी की ओर से गुजरते हुए यदि सस्ते भाव अंगूर मिल जायें तो खरीद लिया करता था। महँगे अंगूर न खरीदकर केवल सस्ते अंगूर खरीदना कंजूसी हो सकती है, पाप नहीं।

पर अंगूर की इस बेल ने मेरे मन में पाप की भावना जगा दी है।

वात यह है कि नीचे की मंजिल खाली पड़ी है। वहाँ कोई नहीं रहता। और, यह अंगूरों की बेल अपने पूरे जीवन पर है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक, अंगूरों के बड़े-बड़े गुच्छों से लदी पड़ी है। उन्हें देखकर, खाने को मेरा मन भी ललचाया था, पर मैंने स्वयं को समझा लिया कि वह दूसरे की सम्पत्ति है, उसे देखकर ललचाना माया है और मुझे मोह-माया से बचना चाहिए।

मैं मोह-माया से लगभग वच चुका था, जब मैंने एक दिन देखा कि मुहल्ले के कुछ वच्चे बाहरी दीवार के साथ ईंटें रखकर दीवार फाँद आए और अंगूरों के कई बड़े-बड़े गुच्छे तोड़कर ले गये ।

तभी मेरे मन में आया था कि इस वेल का एक भी गुच्छा सलामत नहीं रहेगा । मुहल्ले के वच्चे सब लूट-पाटकर ले जायेंगे । तो यदि, इस वेल के भाग्य में लुटना-पुटना ही लिखा है तो क्यों न मैं ही इसके अंगूर खाऊँ । कम-से-कम मैं उसी मकान में रहता हूँ । उस वेल को लूटने का मेरा पहला अधिकार है ।

पाप की इस भावना ने मेरे सामने संसार के अनेक भेद खोल दिये । मैं पहले से अधिक ज्ञानी हो गया । मैं समझ गया कि अंगूर की वेल ब्रह्म के समान इस संसार में अनेक रूपों में विद्यमान है ।

हमारी गलीवाला वह टूरिंग एजेंट ब्राह्मण है । उसकी पत्नी ब्राह्मण-पत्नी हुई । पर वह भी अंगूर की वेल है । पति दूर पर बाहर रहता है और घर पर उसका अधिकारी उपभोक्ता नहीं होता । फिर वच्चों के समान उच्छृंखल लोग आ-आकर उस वेल के अंगूरों का रस लेते रहते हैं और मेरा मित्र शर्मा उस अंगूर की वेल को देख-देखकर दाँत पीसता है—“साली अब्राह्मणों से सम्बन्ध रखती है । जाति भ्रष्ट कर रही है ।”

अब मैं समझता हूँ । उसे जाति के भ्रष्ट होने का दुख नहीं है । उसे वही दुख है जो अपने मकान की अंगूर की वेल का आनन्द दूसरों को उठाते देख मुझे होता है । जब वह कहता है कि ‘जाति भ्रष्ट कर रही है’ तो मैं समझता हूँ कि वह कह रहा है, अपनी जाति की सेवा करने का अवसर वह उसे क्यों नहीं देती ।

वह अंगूरों की वेल शर्मा के मन में पाप जगा रही है ।

मैं स्वभाव से काफी बीमार और चिड़चिड़ा किस्म का आदमी हूँ । स्वास्थ्य का राज—अपने काम से मतलब रखो—आज तक मेरी समझ में नहीं आया । होता यह है कि समाचारपत्र में किसी भ्रष्टाचार का समाचार पढ़ता हूँ, किसी से कोई समाजविरोधी बात सुनता हूँ, कहीं कोई राष्ट्र-विद्वेषी व्यक्ति नजर आता है तो झुंझला पड़ता हूँ । चीखता हूँ,

चिल्लाता हूँ, ब्रह्म करता हूँ, दाँत पीसता हूँ । घर बैठा अपना खून जलाता हूँ और बीमार हो जाता हूँ । सरकार को गालियाँ देता हूँ, पुलिस से द्वेष रखता हूँ, असामाजिक तत्त्वों को गोली मार देना चाहता हूँ, काले-बाजारियों को फाँसी पर लटकाना चाहता हूँ । मगर...मगर यह कि अब जब भारत का नक्शा देखता हूँ तो मुझे अंगूरों की एक बेल नजर आने लगती है । इस देश का वैधानिक रक्षक, उपभोक्ता या स्वामी कोई नहीं है । यह तो अंगूरों की बेल है । सारे मुहल्लेवालों के मन में इसने पाप जगा रखा है । जो आता है, गुच्छा तोड़कर ले जाता है । कभी-कभी मुहल्ले के बाहरवाले भी हाथ मार जाते हैं ।

मुझे अब यह भी लगने लगा है कि नैतिकता और कुछ नहीं, एक बीमारी का नाम है । जैसे टूटी हुई कमरवाला आदमी सीधा तनकर, अपने सर पर लगा अंगूर का गुच्छा नहीं तोड़ सकता और अपने-आपको ईमानदार मान लेता है, वैसे ही अनैतिक कहे जानेवाले कर्म न कर सकने-वाला आदमी साहस के अभाव में शरीफ बन जाता है ।

हमारी गली के नुक्कड़वाला रामलुभाया कई बार मुझसे बदतमीजी से पेश आया है । कितनी ही बार उसने मेरा अपमान किया है । पर मैं हर बार यह कहकर टाल गया हूँ कि मैं शरीफ आदमी हूँ, किसी से हाथापायी तो नहीं कर सकता न ! पर यह शराफत तो मेरी दुर्बलता के कारण है । यदि मैं उसको पीट सकता तो कब से पीट चुका होता । तब मुझे शरीफ बने रहने की आवश्यकता शायद न होती ।

मेरे पिताजी की शराफत अपने रिश्ते-नातेदारों, मुहल्लेवालों और दफ्तरवालों में काफी प्रसिद्ध है । उनके विषय में कहा जाता है कि वे ऐसे शरीफ आदमी हैं, जिन्होंने ज़िंदगी भर कभी किसी कुत्ते को भी पत्थर नहीं मारा, चाहे कुत्ता उन्हें काट ही क्यों न गया हो । मैं जानता हूँ कि यह ठीक है । उन्हें सदा यही डर लगा रहा कि यदि मैंने कुत्ते को पत्थर मारा तो कुत्ते का स्वामी आकर मुझको पीटेगा । और इस डर ने उन्हें शरीफ बना दिया ।

मुझे यह भी लगता है कि अंगूर की बेल मेरे मन में पाप की भावना जगाती रहेगी । पर मुझसे कुछ नहीं होगा । मेरे भाग्य में पाप की भावना

ही है, अंगूरों का रस नहीं । नहीं तो मैं कब से अंगूर तोड़ लाया होता और कहता, "पड़े-पड़े सड़ रहे थे, मैंने खा लिये तो क्या बुरा किया ?" पर मैं यह कहता नहीं । मैं तो सोचता हूँ कि कोई देख लेगा तो क्या कहेगा और लोग हैं कि मेरे मकान में लगी बेल के अंगूर खा-खाकर चटखारे ले रहे हैं ।

●●

समर्पण

बड़ी कठिनाई से कहीं जाकर एक प्रकाशक से अपनी पुस्तक की बात पक्की की। प्रकाशक की दुकान से निकला तो मन ऐंठ रहा था, लो अब तो हम भी लेखक बन गये। पर साथ-ही-साथ मन पर एक चिंता भी सवार हो चुकी थी। पुस्तक छप रही थी तो उसमें एक समर्पण भी होना चाहिये था। पहली पुस्तक थी, किसे समर्पित की जाये?

बड़ी मेहनत से पुस्तक लिखी थी। पूरे पाँच साल लगा दिये थे इसमें, वह भी अपनी भरी जवानी के। पुस्तक तो पूरी कर ली थी, पर अपने अंजर-पंजर ढीले हो गये थे। मुझे अपने ऊपर दया आई—देखो कितनी मेहनत की है इस बेचारे ने, एक सड़ी-सी पुस्तक के पीछे। जवानी गला दी और बीमारी मोल ली। फल क्या पाया? मात्र एक पुस्तक, जिसके पाँच सौ पृष्ठों में से केवल एक या दो पृष्ठों पर इसका नाम लिखा होगा छोटे-छोटे अक्षरों में। उससे अधिक मोटे अक्षरों में पुस्तक का ही नाम लिखा होगा, जिसे इसने लिखा और उस प्रकाशक का नाम भी मोटे अक्षरों में होगा, जिसने पुस्तक को छपा। इससे तो कहीं अच्छा था कुतुब मीनार में, कहीं लोगों की नजर बचाकर कोयले या चाक से अपना नाम लिख आता। हजारों लोग रोज कुतुब मीनार देखने जाते हैं, इसका नाम भी देख आते; पुस्तक तो कुल ग्यारह सौ ही छपेगी। या फिर लक्ष्मीनारायण मंदिर की सीढ़ियों पर अपना नाम लिख आता। कितने

ही भक्त जाते उसका नाम पढ़ते और उसे भला आदमी समझते ।

वस, अपनी इस आत्मदया से मुझे पुस्तक का समर्पण सूझ गया । भला इस पुस्तक के समर्पण के लिये मुझसे उपयुक्त और कौन-सा व्यक्ति हो सकता है । मैंने प्रयत्न न किया होता तो यह पुस्तक कभी भी लिखी न जा सकती, कभी न छपती और कोई पाठक इसे पढ़ न पाता । ठीक है, मैं पहले ही पृष्ठ पर लिखूंगा : “श्री नरेन्द्र कोहली को सादर समर्पित, जिनके प्रयत्न के अभाव में यह पुस्तक कभी न लिखी जा सकती ।”

यह समर्पण मुझे पसन्द था, पर इससे मेरी समस्या नहीं सुलभ रही थी । यारों ने पहले ही बत़ा दिया था कि इस विश्वविद्यालय की चहार-दीवारी में जो भी पुस्तक लिखी जाती है, वह विभाग के अध्यक्ष को ही समर्पित की जाती है । “ठीक तो है” मैंने कहा था, “अध्यक्ष की प्रेरणा और निदर्शन में जो पुस्तकें लिखी जायें, वे उन्हीं को समर्पित की जानी चाहिए । पर मेरी पुस्तक का विभाग के अध्यक्ष से क्या सम्बन्ध ? इस पुस्तक की तो उन्होंने कभी चर्चा तक नहीं सुनी ।” “चर्चा सुनाने के लिए ही तो पुस्तक समर्पित की जाती है ।” यारों ने बताया था, “या तो पुस्तक समर्पित कर दो या फिर नौकरी ही समर्पित कर दो ।”

मैं समझ गया था कि मामला नाजुक है । मैंने अपने-आपको समझा लिया कि पुस्तक से अध्यक्ष का सम्बन्ध नहीं, मुझसे तो है । मुझे यदि इतनी सुविधायें न मिली होतीं तो मैं पुस्तक कैसे लिखता ? अतः उन सुविधाओं के लिये पुस्तक उन्हें समर्पित होनी चाहिए ।

पर सुविधायें तो मुझे अपने प्रिंसिपल ने भी जुटाई थीं । उन्होंने मुझे पुस्तक लिखने के लिये कालेज से अवकाश दिया था और इस पुस्तक के पिछले पचास पृष्ठ टाइप भी कालेज के दफ्तर में हुये थे । वे पचास पृष्ठ तो अवश्य ही प्रिंसिपल को समर्पित होने चाहिए, और कुछ हो या न हो । सुविधाओं के सन्दर्भ में मुझे अपनी पत्नी भी याद आ गयी । उसने भी मेरे लिये बहुत सारी सुविधायें जुटाई थीं । जितने घंटे मैं पुस्तक लिखने में लगा रहता, उतनी देर वह गली के विभिन्न मकानों में मंडराती रहती और सबको अपने घर-निकाले की कथा सुनाती रहती । वह घर पर रहती तो उसका व्यक्तित्व घर और मेरे मस्तिष्क पर इस प्रकार

छाया रहता था कि मैं लिखने का काम नहीं कर पाता था । अतः मुझे लिखने की सुविधा जुटाने के लिये वह वच्चे समेत सोशल आवलिगेशन्स पूरी करती फिरती । मैं जब भी अपने काम से उकताकर घर की किसी खिड़की अथवा मुंडेर पर खड़ा होता तो वह मुझे गली के किसी मकान से भाँकती हुई दिख जाती और पूछ लेती, “आ जाऊँ ?” मैं कह देता, “अभी नहीं ।” तो सुविधायें तो उसने भी जुटाई हैं—उसी को क्यों न समर्पित कर दूँ ? खुश भी हो जायेगी । किसी और को समर्पित कर दी तो खाहमखाह तुनुकती फिरेगी, “हाँ ! हम से तो लोग ही अच्छे हैं ।”

फिर सहसा ही मेरे मन में मातृभक्ति जागृत हो उठी । माँ ने मेरी कितनी सेवा की थी वचपन में । लोग अपनी माता के नाम पुस्तकें तो क्या धर्मशालाएँ समर्पित कर देते हैं । मैं ही क्या कृतघ्न हूँ, जो माँ के लिये कुछ नहीं कर सकता । हो सकता है मैं अपनी भावुकता में रो पड़ता, तभी मेरी बुद्धि ने चेताया । माँ मेरी तो अनपढ़ है, विद्या का अनुराग तो मुझे अपने पिता से मिला, तो पुस्तक पिताजी के ही नाम क्यों न समर्पित करूँ । फिर पिता की बात सोचते हुए, मेरा ध्यान अपने पुत्र की ओर चला गया । क्या यह अच्छा नहीं कि मैं यह पुस्तक मुन्ने को समर्पित कर दूँ ? किसी और को समर्पित कर दी, तो वह क्या सोचेगा, पापा ने पुस्तक भी लिखी और किसी और को समर्पित कर दी ।

अधिकारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी—मेरे मित्र भी थे, सहयोगी भी थे, ससुरालवाले भी थे, गुरु भी थे । आखिर किसे समर्पित करूँ ? मेरा मन कभी एक ओर खिंचता था, कभी दूसरी ओर । और फिर मन राजनीतिक दल के समान टूटकर बिखर गया । उसमें से कई गुट पैदा हो गये, जो एक-दूसरे के विरोधी थे । जब मन ही बंट गया था, तो समर्पण एक कैसे रहता ? मुझे लगा कि समर्पण भी बाँटना ही पड़ेगा । सोचा, हटाओ वखेड़ा—समर्पण बाँट दो । मैंने बाँटे हुए समर्पण की सूची बनाई : मैं इस पुस्तक का मुख-पृष्ठ अपने मुन्ने के नाम समर्पित करता हूँ, जिसने मेरी खरीदी हुई समस्त पुस्तकों तथा पत्रिकाओं के मुख-पृष्ठ फाड़ दिये हैं । इसका आकार अपने पड़ोसियों को समर्पित है, जिन्होंने मेरी आयताकार पुस्तकों के कोनों को घिस कर उन्हें गोल बना

दिया है । स्वादिष्ट खाना देने के कारण, पुस्तक में आये सभी सब्जियों के नाम अपनी पत्नी की रसोई को समर्पित हैं । पुस्तक में छपाई की भूलें अपने गुरुओं को समर्पित करता हूँ, जिन्होंने मुझे भूलें सुधारने की क्षमता नहीं दी । पुस्तक के सारे कौमे और खड़ी पाइयाँ अपने माता-पिता तथा बड़े लोगों को समर्पित हैं, जिन्होंने मुझे जीवन में स्थान-स्थान पर थोड़ा या अधिक अटकाया । पुस्तक की सूचीवाला पृष्ठ अपने विभाग के अध्यक्ष को समर्पित है, ताकि वे मेरा नाम अपने कृपापात्रों की सूची में रखें । पुस्तक में आई संख्याएँ अपने कालेज के टाइमटेबल इंचार्ज और वेतन-अधिकारी को समर्पित हैं ताकि वे मेरे पीरियडों की संख्या घटाएँ और वेतन के रुपयों की संख्या बढ़ाएँ । पुस्तक में आगे या पीछे छोड़े गए सादे पृष्ठ अपने प्रिंसिपल को समर्पित करता हूँ ताकि उन्हें कुछ भी पढ़ने का कष्ट न करना पड़े । और अन्त में समर्पणों का यह पृष्ठ अपने प्रकाशक को समर्पित करता हूँ ताकि वह चाहे तो इस पृष्ठ को छापे, चाहे तो न छापे ।



मिट्टी में सड़ते नोट

मेरा पंखा खराब हो गया । मैं उसके खराब हो जाने की प्रतीक्षा में ही था । बहुत पुराना पंखा था और इधर पिछले कई वर्षों से बहुत आवाज करने लगा था । जब तक वह चलने से एकदम इन्कार ही न कर देता, मैं नया पंखा खरीदता भी कैसे ? जब तक लोग काम बन्दकर, लाठी-डंडे लेकर लड़ने को तैयार न हो जाएँ, तोड़-फोड़ न करें और आग न लगाएँ, तब तक उनके आराम की व्यवस्था करने की परम्परा हमारे यहाँ नहीं है । अब वह खराब हो गया था । उँगली, पेंसिल या किसी लकड़ी से जोर से घुमा देने पर भी नहीं चलता था । रात भर मैं मच्छरों और गर्मी से काफी परेशान रहा ।

दूसरे दिन सवेरे ही मेरे पड़ोसी मेरे साथ लड़ने के लिए आ पहुँचे । आते ही बोले, “साहब । आपने रात भर हमें सोने नहीं दिया ।”

“रेडियो तो शर्मा साहब ने पूरे वाल्यूम पर लगा रखा था । आप को गलतफहमी हुई है ।” मैंने कहा, “उसी शोर के मारे आप सो न पाए होंगे ।”

“रेडियो को गोली मारिए ।” वे बोले, “मैं पंखे की बात कर रहा हूँ । आपने पंखा क्यों नहीं लगाया ?”

“पंखा खराब हो गया है ।” मैंने उन्हें बताया, “मैं खुद गर्मी से परेशान रहा । हवा से अच्छी नींद आ जाती थी ।”

“हवा को मारिए गोली ।” वे चिढ़कर बोले, “मुझे तो उसकी आवाज से नींद आती थी । मेरे लिए वह लोरी का-सा असर रखती थी । रात आवाज थी नहीं । मुझे नींद ही नहीं आई ।”

मुझे पहली बार समझ में आया कि पंखे की तबीयत क्यों खराब रहती थी । बेचारे पर कितना स्ट्रेन था । दीवार की इस ओर मुझे सुलाता था और दीवार के उस ओर पड़ोसी महोदय को । इसी स्ट्रेन के मारे तो खराब हो गया । आखिर कोई कब तक डबल ड्यूटियाँ करता जाये । सारे देश के साथ यही हो रहा है । हर आदमी पर दुहरा बोझ है । एक अपने परिवार का और एक सरकार का । जब तक ताकत होती है, चलता है फिर चीं बोल जाता है । जी में आया, पड़ोसी से कहूँ, आधे पैसे निकाल । पंखे की मुरम्मत करवा लेते हैं । रात को तुम भी सो जाना, मैं भी सोऊँगा । पर मुझे उसका इतने दिनों तक मेरे पंखे के सहारे मुझसे पूछे बिना सोना अच्छा नहीं लगा था । सोचा, इस साले को सोने नहीं दूँगा, चाहे स्वयं भी रात भर गर्मी से छटपटाता रहूँ ।

मुझे लगता है कि सब जगह एक ही हाल है । ऊपर से नीचे तक । कहीं कोई अन्तर नहीं है । हम देश का बजट बनाने लगते हैं तो पहले यह हिसाब लगाने लगते हैं कि अमरीका हमें क्या देगा, रूस क्या देगा, और देश क्या देंगे, भारत-सहायता क्लब क्या देगा, इत्यादि । उसके पश्चात् हम अपनी आय का हिसाब लगाने हैं । मेरे पड़ोसी भी जब अपना मासिक बजट बनाते हैं तो सोच लेते हैं कि मुहल्ले में ऐसा घोंघा आदमी कौन है जो माँगने पर किसी चीज से इन्कार न कर सके । वह घोंघा आदमी शरीफ कहलाता है और अपनी शराफत अर्थात् घोंघापन बचाये रखने के लिए घर लुटाता रहता है । हमारे पड़ोसी शरीफ लोगों की सूची बनाने के पश्चात् सोच लेते हैं कि किस के घर से आटा माँगा जा सकता है, कहाँ-कहाँ से चाय की पत्ती जमा की जा सकती है, और चीनी की कटोरी । इस तरह से दूसरों के खर्च पर अपना काम चलाने की पारिवारिक परम्पराएँ बन जाती हैं ।

मेरी जान-पहचान के एक सज्जन बड़े गर्व से कहा करते हैं कि उनके घर कभी थर्मामीटर नहीं आया । मैं जानता हूँ कि वे एकदम सही

कहते हैं। उन्होंने वस्तुतः कभी थर्मामीटर नहीं खरीदा। जब जरूरत पड़ी मेरे घर से ले गए। कभी उनसे टूट गया, कभी गुम हो गया—पर थर्मामीटर उन्होंने लौटाया नहीं। जानते थे, मैंने नया खरीद लिया होगा। फिर माँगने आ गए। मैं जानता हूँ, वे अपने बजट में थर्मामीटर आइटम के सामने लकीर खींच कर लिखते हों—‘नरेन्द्र कोहली’। साथ ही कोष्ठकों में लिख देते होंगे, थर्मामीटरवाला घोंघा।

कुछ लोग रोज ही मेरे पास डाक का लिफाफा माँगने पहुँचे हुये होते हैं। वे समझते हैं जैसे उनका अन्न, सरकार राशन की दुकान पर पहुँचा देती है, वैसे ही उनके हिस्से की डाक-टिकटें डाकघर मेरे पास भेज देता है। सारे जान-पहचानवालों के लिए हिन्दी की पत्रिकाएँ जुटाना तो तह्मा ने मेरी जन्मकुंडली में लिख रखा है। वे यदि खरीदेंगे भी तो, अँग्रेजी की पत्रिकाएँ ही।

एम० ए० में मेरी कक्षा में एक लड़की पढ़ा करती थी। वह कक्षा में, अपने साथ एक कलम लाती और एक पेंसिल। पेंसिल छीलने के लिए एक ब्लेड भी अवश्य रखती थी। कलम वह अपने लिए लाती थी और पेंसिल ‘क’ के लिए। ‘क’ उसका प्रेमी नहीं था। भाई भी नहीं था। पर ‘क’ ने अपने नियम बना लिये थे। प्रत्येक पीरियड में वह उस लड़की के पीछे ही बैठता था और जैसे ही कुछ लिखने की आवश्यकता होती, वह भुंक-कर उस लड़की से पूछता, “लिखने के लिए कुछ है? मैं पैन भूल आया हूँ।” वह चुपचाप, बिना उसकी ओर देखे, अपने बैग से वह छोटी-सी पेंसिल निकालकर उसे पकड़ा दिया करती थी। कभी-कभी ‘क’ अपनी टूटी हुई पेंसिल उसके सामने कर देता, “जरा कलम दे दो। मेरी पेंसिल टूट गई है।” और वह चुपचाप, बिना कुछ कहे, बैग से ब्लेड निकालकर उसकी हथेली पर रख देती।

‘क’ ने उसके पीछे पड़े रहने का यह वहाना सोच रखा था और उस लड़की ने पीछा छुड़ाने के लिए प्रवन्ध कर रखा था।

मेरे एक और मित्र हैं जो अपने वेतन को अपने एकाऊंट में जमा कराकर, दूसरों से उधार माँगते रहते हैं। आज ‘क’ से उधार लेकर खर्च कर डाला, कल ‘ख’ से पैसे लेकर ‘क’ का उधार चुका दिया। ‘ख’

को देने के लिए 'ग' से उधार ले लिया। उनका विचार है, इस प्रकार वे अपने पैसों की बचत करते हैं और उस पर व्याज भी कमा लेते हैं। ऐसे ही जब कोई आकर मुझे घेरता है कि मेरी पत्नी मुझसे ठीक तरह पेश नहीं आती। बताओ मैं क्या करूँ ? मेरे बच्चे पढ़ने में मन नहीं लगाते, आप क्या सलाह देंगे ? मेरी, पड़ोसियों से नहीं बनती। क्या करें ? तो मुझे लगता है कि ये सब लोग, अपना वेतन एकाऊंट में जमा कराकर, उस पर सूद कमा रहे हैं और दूसरों के पैसों से अपना खर्च चला रहे हैं।

कहते हैं कि जब आरम्भ में भगवान् ने दो-चार लाख मनुष्य बनाये तो बड़ा परेशान रहता था। उसे सदा ध्यान रखना पड़ता था कि कौन क्या कर रहा है। कोई पानी में न डूब मरे, कोई आग में न जल मरे, कोई युवा-लेखन पढ़-पढ़कर बोर होकर न मर जाए। भगवान् दिन भर पंजों के बल उलझ-उलझकर देखता रहता था। बेचारा गर्मी की दोपहरी में, एक पल भी नहीं लेट पाता था।

तभी किसी मुँह-लगे ने परामर्श दिया कि हे भगवान् जी ! ऐसे एक-एक मनुष्य के पीछे हल्कान क्यों होते हैं ? प्रत्येक मनुष्य की खोपड़ी में थोड़ी-सी बुद्धि डाल दो। सब अपनी-अपनी चिन्ता स्वयं कर लेंगे।

भगवान् ने वैसा ही किया और निश्चित होकर सो गया। और तब से आज तक सोया ही हुआ है।

पर लोगों ने भगवान् की दी हुई, अपने हिस्से की बुद्धि फिक्स्ड डिपॉजिट में डाल रखी है और उस पर व्याज कमा रहे हैं। जीवन तो वे दूसरों के खर्च पर ही काट लेते हैं। जरा-सा कुछ हुआ नहीं कि भागे आये, "आपसे एक सलाह लेनी है।" जो कुछ अधिक बड़े लोग हैं, वे भागे-भागे प्रदेश की राजधानी पहुँचते हैं और उनसे ऊँचे लोग दिल्ली पहुँचते हैं—प्रधान मंत्री से सलाह लेने।

कुछ लोग तो और भी ऊँचे हैं। वे विदेशी मुद्रा अर्जित करने के चक्कर में रहते हैं। यहाँ कोई घटना घटी और वे भागे बेदम होकर—वाशिंगटन, मास्को, पीकिंग, लन्दन, इस्लामाबाद...। विदेशियों की बुद्धि के खर्च पर अपनी समस्याओं को सुलझा लेते हैं। समझते हैं कि उनकी

अपनी बुद्धि फिक्स्ड डिपॉजिट में पड़ी ब्याज कमा रही होगी। पर होगा इनके साथ वही, जो उस बुद्धू के साथ हुआ था, जिसने हजारों रुपये के नोट हाँडी में डाल मिट्टी में गाड़ दिये थे। दीमक खा गये, सारे नोट। मेरी सलाह है कि फिक्स्ड डिपॉजिट में रखी अपनी बुद्धि को वे लोग कभी-कभी निकालकर देख लिया करें और उनकी भाड़-पोंछ भी कर आया करें।



जीवन का मिशन

अपना देश प्रकाश और ज्ञान का उपासक है। अन्धकार तामसी प्रवृत्ति है। हम उससे घृणा करते हैं। मेरा वच्चा एक वास्तविक भारतीय आत्मा है। वह सरेगाम सो जाता है—अन्धकार होने से पहले-पहले ही। फिर अन्धेरा होते ही हम बिजली का खूब रोशनीवाला बल्ब जला देते हैं। मेरी आँखें कमजोर हैं इसलिए बिना अच्छी रोशनी के मुझसे काम नहीं होता। मैं दो सौ वाट के बल्ब की रोशनी में पड़ता रहता हूँ और मेरा वच्चा नींद में भी प्रकाश ग्रहण करता रहता है। पर जैसे ही हम सोने के लिए बत्ती बुझाते हैं तो उसकी भारतीय आत्मा तड़पकर उठ बैठती है—“बत्ती जलाओ। बत्ती जलाओ।” भारतीय संस्कृति में सधे हुए मेरे कान सुनते हैं—“तमसो मा ज्योतिर्गमय।” मैं उसे अन्धकार से प्रकाश में ले जाता हूँ और बत्ती जला देता हूँ। वह प्रकाश का प्यासा बल्ब की किरणों का पान करता है और सो जाता है और मुझे रोशनी में नींद नहीं आती। मैं इस संस्कृति में मिसफिट हो गया हूँ।

फिर वह सूर्यवंशी आधी रात को अपनी नींद पूरी करके उठ बैठता है और सूर्य के उगने की प्रतीक्षा करने लगता है। ऐसा तो हो नहीं सकता कि वह उठ बैठे और हम सोये रहें। वह चाहता है कि हम भी उठकर बैठ जायें और उसके साथ मिलकर प्रकाश के दूत सूर्य की प्रतीक्षा करें। हम दोनों—पति-पत्नी—उसे समझाते हैं कि “हे भारतीय आत्मा !

पहली बात तो यह है कि तुम्हारी नींद पूरी हो चुकी है, हमारी नहीं। फिर तुम्हारे लिए हर दिन एक कैजुअल लीव है, जबकि हमें अपने-अपने काम पर भी जाना पड़ता है।" पर वह ज्ञान का पुजारी हमें निशाचर मानकर हमारी मायावी बातों में नहीं आता और यह देखकर कि उसके छोटे-मोटे प्रहारों का हम पर कोई प्रभाव नहीं होता, वह अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ता है, "मामा छू-छू आया है। पापा छि-छि आ गई।" और हम दोनों ही कमांडर की आज्ञा पाकर फुर्तीले सिपाही के समान उठ खड़े होते हैं। विस्तर गन्दा करवाने का साहस हम नहीं कर सकते !

मैं यह मान गया हूँ कि हमारे जीवन को प्रकाश से जगमग करना ही उसके जीवन का मिशन है। वह हमें अन्धेरे में डूबने नहीं देगा। ऐसा ही मिशन लेकर कुछ और लोग भी हमारे आस-पास आ बसे हैं। हमारे मकान की ऊपरी मंजिल में रहनेवाली गृहिणी का भी कुछ ऐसा ही मिशन है। सुबह होती नहीं, हमारी नींद अभी टूटती नहीं कि ऊपर हमारे सरों पर ठका-ठक शुरू हो जाती है। पहले-पहले मैं समझ नहीं पाया था कि क्या होता है। बाद में पता चला कि उन महिला को नींद न आने की बीमारी है। सवेरे चार बजे तक वे किसी प्रकार चारपाई पर करवटें बदलती रहती हैं। और जब नहीं रहा जाता तो उठ बैठती हैं। सोचती है कि घर का कुछ काम ही कर लें। वे अपने पति के भय से बत्ती जला नहीं सकतीं तो अंधेरे में क्या काम करें? बस कूंडी-डंडा लेकर दिन भर में बननेवाली सब्जियों के लिए प्याज और मसाले कूटने बैठ जाती हैं—हमारे सर पर ठका-ठक !

पहले तो मैं खीजता था कि कैसी बेढव औरत है सोने ही नहीं देती। पर जब से जीवन के मिशनवाला यह सिद्धान्त मेरी खोपड़ी में समाया है, मेरी नजरों में उसका सम्मान बहुत बढ़ गया है। अब मैं उसे देखते ही श्रद्धा से हाथ जोड़ देता हूँ और सवेरे चार बजे जब उसकी ठका-ठक शुरू होती है तो मैं उठ बैठता हूँ और पवित्र मन से गाता हूँ—

“कबिरा रसरी पांव में क्या सोवै सुख चैन।

स्वांस नगाड़ा कूच का बाजत है दिन रैन ॥”

वह कूंडी-डंडा नहीं है स्वाँस का नगाड़ा है, जो मेरे सर पर वजता रहता है ।

कूंडी-डंडे की ज्ञान-वार्त्ता से मैंने समझौता किया ही था कि हमारे मकान की निचली मंजिल में एक नये किरायेदार आ गये । कहते हैं कि उनकी पत्नी को कोई ऐसा रोग था जिसके उपचार के लिये डॉक्टर ने उन्हें दिन में कम-से-कम आध घण्टा चक्की चलाने के लिये कहा था । पता नहीं चक्की चलाना उनका रोग था या रोग का निदान—पर वे कूंडी-डंड की स्वर से भी पहले ही चक्की की धर्र-धर्र शुरू कर देती थीं । नीचे की मंजिल से धर्र-धर्र और ऊपर की मंजिल से ठका-ठक और बीच में हम । अब मैं कवीर का दूसरा दोहा भी पूरी भक्ति-निष्ठा से गाने लगा—

“चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय ।

दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय ॥”

यहीं से पहले-पहल हमें संसार के दुःख का भान भी हुआ था और अपनी स्थिति का ज्ञान भी, नहीं तो फर्स्ट फ्लोर पर रहकर स्वयं को बहुत सुरक्षित समझने लगे थे ।

और मेरी पत्नी भी आजकल कुछ ज्ञानी हो गयी है । सुबह उठते ही वच्चे के गन्दे कपड़े लेकर बाथरूम में घुस जायेगी । मैं चिल्लाऊँगा, “चाय !” उसका स्वर आयेगा, “अजी कपड़े धो लूँ ।” मैं कहूँगा, “नाश्ता” वह कहेगी, “अजी ! कपड़ों की मैल उतार लूँ ।” मेरा सारा कार्यक्रम चौपट हो जायेगा पर सूर्य देवता के उगते-उगते घर की सारी तारें कपड़ों से भर जायेंगी । अन्त में मैं समझ गया कि यह भी आत्मा का मैल धोने का मिशन लेकर आई है । प्रतीकात्मक ढंग से मुझे समझा रही है कि चाय पीकर क्या करेगा, आत्मा का मैल धो । नाश्ता क्या करेगा, आत्मा का मैल धो । ये साधारण कपड़े नहीं हैं—कवीर की चदरिया है । ज्यों की त्यों धुली-धुलाई रखी जायेगी ईश्वर के सामने । मैली चादर उसे पसन्द नहीं है पर आत्मा के इस मल-शोधन के पीछे मुझे भूखे ही कालेज जाना पड़ता है ।

कभी-कभी गम्भीरता से सोचने लगता हूँ तो विभिन्न लोगों के प्रति बिखरी हुई मेरी सारी श्रद्धा एकत्रित होकर कबीर के चरणों में जा बैठती है। यह व्यक्ति त्रिकालदर्शी था। उसे अपने समय के सत्य के साथ-साथ भविष्य के सत्य का भी पता था। यही कारण है कि भारत के आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन में सर्वाधिक उद्धृत होनेवाला कवि है। आजकल विश्वविद्यालयों में भी उसका बहुत प्रचार है।

तीस वर्षों से अधिक आयु के प्रत्येक व्यक्ति को यह शिकायत है कि आज का विद्यार्थी पढ़ता नहीं और अध्यापक वर्ग तो इस शिकायत की पीड़ा से पेचिश की पीड़ा के समान दुखी हैं। मैं भी देखता हूँ कि लड़कों को अपनी पढ़ाई से वैसे ही अरुचि हो गई है जैसे किसी ब्रह्मज्ञानी को सांसारिकता से हो जाती है। तो इन लड़कों ने भी कोई-न-कोई ज्ञान प्राप्त कर ही लिया होगा। उन्होंने पुस्तकों को मोह-माया के समान त्याग रखा है।

मैंने एक दिन किताबें न लाने के कारण पूरी-की-पूरी क्लास को डाँट दिया। मूर्खता थी मेरी और क्या? सोचता था लड़के लज्जा और ग्लानि की डबल-ऐक्शन से पीड़ित होकर चेहरा हथेलियों में छिपा लेंगे। मुझ से क्षमा मांगेंगे और भविष्य में पुस्तकें लाने का वचन देंगे।

पर ऐसा नहीं हुआ। क्लास के चेहरे पर लज्जा या ग्लानि के स्थान पर ब्रह्म-तेज उद्दीप्त हुआ। क्लास चिल्लाकर बोली, “आप हमें विष लाने के लिए कहते हैं, विष खाने के लिए कहते हैं।”

“कैसे?” मैंने पूछा।

क्लास ने मुझे समझाया नहीं, उल्टे दूसरा प्रश्न किया, “आप जानते हैं भारत में पहले मृत्यु-संख्या इतनी क्यों थी?”

“नहीं। क्यों थी?” मैंने अपना अज्ञान स्वीकारकर जिज्ञासा की।

“आपकी इन्हीं पुस्तकों के कारण।” उत्तर मिला, “कबीर ने कहा था ‘पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुआ’। अर्थ साफ है जग के मरने का कारण पोथी पढ़ना था। आपको पता होगा कि भारत की जनसंख्या का नाश महाभारत के युद्ध में नहीं, वेदव्यास की पुस्तक महाभारत को पढ़कर हुआ था। पोथी विष है, जिसके सेवन से लोग मर जाते हैं। पहले लोग

पोथियाँ अधिक पढ़ते थे, अतः मृत्यु-संख्या अधिक थी । अब हम इस विषय के सेवन से इंकार करते हैं । आज भारत की बढ़ी हुई जनसंख्या का एकमात्र कारण लोगों का पोथी न पढ़ना है ।”

“फिर ये स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय क्यों हैं ?” मैंने पूछा ।

“आपको शायद पता नहीं है,” उत्तर मिला कि “विभिन्न स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय ही नहीं गाँव-गाँव में पुस्तकालय भी खोले जा रहे हैं । यह सारा काम शिक्षा विभाग के नाम पर परिवार-नियोजनवाले कर रहे हैं । वे पहले यह चाहते थे कि बच्चे पैदा ही कम हों, अब वे चाहते हैं कि लोगों की मृत्यु-संख्या भी बढ़े ताकि इस देश की जन-संख्या कम हो जाये ।”

मैं अपनी नादानी पर बहुत पछताया और पीड़ित-सा चला आया । पर मेरे भीतर अध्यापकीय क्षोभ उमड़ता-धुमड़ता ही रहा । लड़कों की परीक्षा सर पर आ गई थी और मैं उनके लिए बहुत चिंतित था । आखिर जब उसी ज्ञानी क्लास के एक लड़के को संदिग्ध चरित्र की एक लड़की के साथ घूमते देखता तो मेरे भीतर की मास्टरी उबल ही पड़ी । पूछ बैठा, “क्या कर रहे हो ?”

“परीक्षा की तैयारी !” उसने शांत मन से कहा ।

“इश्क के चक्कर से फुरसत मिले तो पढ़ाई करो न !” मैंने व्यंग्य किया ।

पर उसकी साधना-मुद्रा नहीं बदली । बोला, “इश्क और ज्ञान में विरोध कहाँ है गुरुजी ! ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होय ।”

मैं सोचने लगा सचमुच इन लड़कों की मनःस्थिति को हमसे अधिक कबीर समझता था और ये लड़के भी हमारी अपेक्षा कबीर के अधिक समीप हैं । फिर मुझे यह भी लगा कि हमारे देश की दुर्दशा का एक कारण यह भी है कि हम अपने युवकों को समझते नहीं हैं । युवकों को ठीक-ठीक समझनेवाला शिक्षा-मन्त्री मिल जाये तो सारा छात्र-असन्तोष, युवक-विद्रोह इत्यादि शांत हो जाए और देश सही ढर्रे पर चलने लगे । तो फिर स्वयं कबीर से अच्छा शिक्षा-मन्त्री और कौन हो सकता है—हुमायूँ कबीर नहीं, स्वयं सन्त कबीर ।

●●

स्मार्टनेस का मूल्य

मेरा बच्चा बहुत जिद्दी है, किसी की कोई बात नहीं मानता। प्यार-डॉंट या समझाने की किसी भी परम्परागत विधि का उस पर कोई असर नहीं पड़ता। मेरी पत्नी आखिर उसकी माँ है। माँ को किसी बात की आवश्यकता होती है तो वह आविष्कार की नानी बन जाती है। मेरी पत्नी ने भी एक नई विधि का आविष्कार किया है। बच्चा जब जिद करता है और किसी प्रकार नहीं मानता तो मेरी पत्नी उसे डरा देती है : “अभी गांधीजी को बुलाऊँगी, वे अपने डण्डे से पीटेंगे तुम्हें।” और बच्चा दीवार पर लगे हुए कैलेण्डर की ओर देखकर डर जाता है, जिसमें गांधीजी के पास एक लम्बी-सी लाठी है !

मेरे एक मित्र के बच्चे का एक सड़क-दुर्घटना में देहान्त हो गया। मित्र वैसे ही बहुत भावुक थे, फिर यह करारी चोट। उनका स्वभाव काफी परिवर्तित हो गया। कोई कहता है पगला गए हैं, कोई कहता है, दार्शनिक हो गए हैं। एक बार उनका कोई रिश्तेदार ऐंठकर धमकियाँ दे रहा था, मैं यह कर दूँगा, वह कर दूँगा। और वे क्रुद्ध होने के बदले ठहाका मारकर हँस पड़े थे : “आदमी अपने-आपको पता नहीं क्या समझता है ? भूल जाता है कि वह कितना बेबस है। तुम ऐंठते हुए मुझे किसी भिगुर से लगते हो।” उन्हें इसी प्रकार हैल्यूसिनेशन्स होती रहती हैं, कभी कुछ नजर आता है, कभी कुछ !

मेरे साथ वैसी कोई दुर्घटना नहीं हुई है। पर अपने देश की करतूतों को देख-देखकर मन मेरा भी कुछ विकृत हो ही गया है। बैठे-बैठे, देखता हूँ तो मेरे सामने की वस्तुएँ अपना वास्तविक रूप-आकार बदल कर कुछ-की-कुछ दिखने लगती हैं। अब बैठे-बैठे ही अपनी पत्नी की जगह कोई नेता बैठा दिखने लगा है। क्या उपयोग है गांधीजी के डंडे का ? गांधीजी न हुए कोई हिंस्र वर्वर हो गया, जिससे बच्चे को डराया जा रहा है। पर बच्चा भोला है, वहक जाता है। उसे क्या पता कि यह बात गांधीजी के नाम से मेल खाती भी है कि नहीं। जनता भी भोली है, गांधीजी के नाम से वहका दी जाती है और वह है कि वहक जाती है। जहाँ कोई टोटका नहीं चलता, वहाँ गांधीजी फिट कर दिए जाते हैं। देश को लूटने के लिए ट्रंप कार्ड। गांधीजी न हुए ताश का जोकर हो गए, जहाँ चाहा फिट कर दिया और माल अपने गल्ले में।

मेरी पत्नी बच्चे को स्कूल भेजने के लिए तैयार कर रही है। माँ और बच्चे की रुचि मेल नहीं खाती। जो कपड़े वह पहनाना चाहती है, वे बच्चे को पसन्द नहीं हैं। वह उन्हें उठा-उठाकर परे फेंक देता है और माँ जबर्दस्ती करती है तो रोता है। रोज इसी झगड़े में स्कूल को देर हो जाती है। तरह-तरह के भांसे देकर उसे तैयार किया जाता है। आज भी गांधीजी के डंडे का भय दिखाकर उसने बच्चे को लाल जुराबें, लाल बूट और लाल निकर पहना दी है। बच्चा मुंह बसोर रहा है और वह उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी प्रशंसा कर रही है : “अहा ! क्या मैचिंग ! लाल बूटी, लाल जावी, लाल पैटी ! अहा ! क्या मैचिंग ! गांधीजी देखें तो शरमा जाएँ।”

मुझे लगता है, उसकी बात में सच्चाई है। सचमुच शरमा जाएँ गांधीजी—इस देश में इतना कुछ मैचिंग देखकर। कभी नहीं सोचा होगा गांधीजी ने कि वे देश के इन फैशनपरस्तों की स्वतन्त्रता के लिए स्वतन्त्रता माँग रहे हैं, जो अति वैभव से पीड़ित हैं और करने को कोई काम न होने के कारण नंगे होकर विचित्र वेश-भूषा में राजधानी की फैशनेबल सड़कों पर हुड़दंग मचाते फिरते हैं। उन्होंने मिनि धोती गरीबी के प्रतीक रूप में बांधी थी और यारों ने उन्हें फैशन का माडल

बना दिया ।

कैसी समानता है ? मेरी पत्नी भी बच्चे पर अपनी इच्छा थोपकर तालियाँ बजा रही है—“अहा ! कितनी मैचिंग !” और वहाँ सरकार भी देश पर अपनी मनमानी रंग-विरंगी नीतियाँ थोपकर खुश हो रही है, “अहा ! कितनी मैचिंग !” देश के सर पर टोपी तंग है, सर में दर्द होने लगा है, पैर में जूता काट रहा है । कपड़े तंग हैं । और तालियाँ बज रही हैं, “अहा ! कितना मैचिंग !” देश मेरे बच्चे के समान अपनी बोली में छत्तीसों गीत गाता है और सरकार मेरी पत्नी के समान कहती है, “बेटे ! यह नहीं । वह स्कूलवाला अंग्रेजी गाना—थैंक यू गॉड...।” बच्चा गूंगा हो जाता है और चुपचाप हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है । उसकी माँ फिर कहती है—“गाओ बेटे ! थैंक यू गॉड फार एवेरी थिंग ।” और बच्चा थूक निगलकर बड़ी कठिनाई से कह देता है...“इंग” माँ ताली मार देती है, “अहा ! कितना स्मार्ट है ।” मैं सोचता हूँ—गांधीजी देखें तो शरमा जाएँ । स्मार्टनेस के पीछे देश को गूंगा कर दिया कमबख्तों ने ।

२१

बोर कथा

बार करने की प्रथा अपने देश में बहुत पुरानी है ।

कहते हैं, विद्यापति रानी लखिया देवी को सामने बैठाकर कहते थे, “भनइ विद्यापति सुन बरजुवति बोर करव हम तोहर ।” वैसे भी राजा-महाराजाओं की आदत होती थी बोर होते रहने की । वे बड़े नियमपूर्वक नियत स्थान पर बैठ जाया करते थे और लोगों को यह पूरा अधिकार होता था कि जाकर अपनी मूर्खतापूर्ण बातों से उन्हें बोर करें । यदि सामान्य जनता बोर करती तो उसे दरबार-ए-आम कहते थे और यदि विशिष्ट जन बोर करते तो उसे दरबार-ए-खास कहा जाता था । आज भी बड़े लोग अपने दरबार लगाते हैं और जनता उन्हें बोर करती है ।

वैसे, बोर होने की शक्ति बड़े लोगों में पाई जाती है और बोर करने की शक्ति साधारण लोगों में । जो लोग इस नियम को नहीं समझते, वे किसी-न-किसी परेशानी में फँस जाते हैं । कालिदास का प्रसिद्ध विरही यक्ष यही भूल कर बैठा था । उसने एक साधारण मेघ को मेघराज समझकर रोक लिया और देश भर का भूगोल पड़ा-पड़ाकर बोर कर डाला । मेघ साधारण था, इसलिए बोर होते रहने की क्षमता उसमें नहीं थी । परिणाम यह हुआ कि नाराज होकर वह अपनी राह चला गया और यक्ष की पोषित-पतिका को उसका सन्देश कभी नहीं मिला ।

बहुत प्रतीक्षा करने पर भी जब यक्ष को अपनी प्रेमिका का कोई सन्देश नहीं मिला तो वह डाक-तार विभाग पर भल्लाता हुआ जाकर डाक-तार मन्त्री की कोठी पर बहुत रोया। मन्त्रीजी स्वयं वहाँ होते तो उसका सारा रोना सुनकर भी बोर नहीं होते। बड़े आदमी हैं, सब सह जाते। पर वहाँ कोठी के फाटक पर एक सिपाही बन्दूक लिए खड़ा था। चाहे बन्दूक थामे खड़ा था, पर था तो साधारण आदमी ही। भट बोर हो गया।

डाँटकर बोला, “चल वे हट यहाँ से। साले ने रो-रोकर फाटक पर ही तालाब बना दिया। अब कीचड़ में से कोई निकलकर कोठी के अन्दर कैसे जायेगा। मन्त्री जी की कार के लिए यहाँ पुल बनवाने अब तेरा बाप आयेगा ?”

यक्ष को भी तैश आ गया। बोला, “मन्त्री की कोठी पर नहीं रोयेंगे तो तेरे जैसे भड़भूँजे के क्वार्टर पर रोयेंगे। इतना ही मन्त्री की कार का ध्यान है तो यहाँ पक्की सड़क बनवा लेते। न मिट्टी होती, न आँसुओं से कीचड़ बनता।”

सन्तरी हंसा, बोला, “मन्त्रीजी धोखे में आ गये। कॉर्पोरेशन के मेयर को इस आशा में पद्मश्री दिलवा दिया कि वह सड़क बनवा देगा, पर पद्मश्री लेकर अब उसका मन पापी हो गया है। वह अब सड़क नहीं बनवायेगा।”

“तो पद्मश्री वापस ले लो।” यक्ष ने सुझाया, “जो काम नहीं करता, उसे पद्मश्री क्यों देते हो ?”

“जल्दी में यह सोचकर दिलवा दी कि कहीं किसी और मन्त्री के मिट्ठू को न मिल जाये। अब यदि वापस लेने की कोशिश की तो लोग कहेंगे, कल जिसकी इतनी प्रशंसा की आज उसकी निन्दा कैसे कर रहे हो। पद्मश्री दिलवाकर फँस गये मन्त्रीजी।”

“सालों ने हमें कहीं रोने लायक नहीं रखा।” यक्ष निराश होकर चल पड़ा, “अब तो रोने के लिए भी कोई ताल-तलैया खोजना पड़ेगा।”

“सुन वे !” सन्तरी ने पीछे से पुकारकर कहा, “किसी तालाब में मत रोना, ये जल-प्रदायवाले बिना फिल्टर किये तेरे आँसुओं का खारा

पानी शहर भर को पिला देंगे । हम आगे ही लोगों के खारेपन से बहुत दुखी हैं ।”

“मैं मिट्टी पर भी नहीं रो सकता और जल में भी नहीं ।” यक्ष ने आकाश की ओर देखकर अपनी छाती पर जोर का घूँसा मारा, “तो मैं धरना दूँगा ।”

“धरने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।” सन्तरी मुसकराया, “जब-जब कोई आदमी यहाँ धरना देता है, मेरा अकेलापन मिट जाता है । बात-चीत के लिए एक साथी मिल जाता है ।”

यक्ष वहीं बैठ गया ।

मन्त्रीजी रात को लौटे तो उनकी कार का पहिया यक्ष के आँसुओं के कीचड़ में फँस गया । जब कार रुक गयी तो उन्होंने पूछ लिया, “क्या बात है ?”

“सरकार ! मैं अपनी प्रेमिका से बिछुड़ा हुआ विरह का मारा हूँ । मेरी सहायता करें ।” यक्ष ने कहा ।

“जल्दी-जल्दी अपनी माँगें बताओ ।” मन्त्री जी बोले, “कर्ण के रथ के पहिये के समान आज मेरी कार का पहिया भी कीचड़ में फँस गया है । लगता है, मुझसे भी जीवन में एक-आध दुष्कर्म अनजाने में हो ही गया है ।”

यक्ष बोला, “मन्त्री जी ! आप जानते हैं विरही के लिए संसार में सबसे महत्वपूर्ण कार्य है प्रेमिका के साथ सम्पर्क बनाये रखना । आपकी दूषित डाक-व्यवस्था के कारण यह सम्भव नहीं हो पा रहा है, इसलिए ये माँगें हैं...”

१—विरहियों की एक यूनियन बनायी जाये और उन लोगों को विशिष्ट लोगों का सम्मान मिले ।

२—विरहियों को पत्र लिखने के लिए न्यूजप्रिंट का विशेष कोटा दिया जाये ।

३—विरहियों को एक विशिष्ट विरही-डाक-संख्या दी जाये और पत्रिकाओं को दी जानेवाली डाक की सुविधाएँ उन्हें दी जानी चाहिए ।

४—विरहियों के पत्रों पर बुक-पोस्ट के समान ‘विरही-डाक’ लिखने

की अनुमति दी जाये ।

५—जैसे ही किसी डाकघर में किसी विरही का कोई पत्र आये, उसे विरही तक पहुँचाने के लिये एक विशेष सन्देशवाहक, मोटर पर सायरन बजाता हुआ वैसे ही जाये, जैसे फायर-ब्रिगेड जाता है !”

यक्ष चुप हो गया ।

“जाओ हमने तुम्हारी सारी माँगें मान लीं ।” मन्त्री जी बोले, “वस विरही शब्द के स्थान पर मन्त्री शब्द रख दिया है ।”

मन्त्री जी की इतनी सी बात से बोर होकर यक्ष भाग गया । वह अपने विरह की पीड़ा में यह भूल गया था कि वह साधारण आदमी था, बोर करने की क्षमता तो उसमें थी, बोर हो पाने की क्षमता नहीं थी । वस इस तकनीकी परेशानी के कारण उसे भागना पड़ गया ।

ऐसे दो-चार विरही मेरे पड़ोस में भी आ बसे हैं । उन्हें डाक-तार-मन्त्रालय ने वे सारी सुविधाएँ नहीं दीं, जिनकी माँग यक्ष ने की थी, पर मुझे बोर करने की सुविधा उन्हें सरकारी तौर पर दे रखी गयी है । इस बात से जहाँ मैं सरकार से नाराज हूँ—वहाँ अपने चेहरे से भी सख्त नाराज हूँ । पता नहीं कि मेरे चेहरे में ऐसी क्या बात है कि निस्संकोच अपनी प्रेम-कथाएँ मुझे सुनाने लगते हैं ।

किसी की पत्नी मायके से उसे हिन्दी में पत्र लिखती है और उस अंग्रेजीदां के पत्र को हिन्दी का यह लेखक पढ़कर सुनाने को बाध्य है । किसी का पति दूर पर से पत्नी को अंग्रेजी में पत्र लिख देता है । उसे हिन्दी में अनुवाद करने का पवित्र दायित्व, राष्ट्रभाषा के इस समर्थक का है । “क्या बताएँ कोहली साहब !” लोग आकर वेभिभक्त कह जाते हैं, “सारे मुहल्ले में केवल आपकी नेम-प्लेट हिन्दी में है, इसलिए आपके पास चले आये हैं ।”

अब या तो मैं अपनी नेम-प्लेट उतरवा दूँगा या बोर होकर किसी दिन मुहल्ला छोड़ दूँगा । पर फिर एक बात और भी सोचता हूँ । आखिर आज तक मैं बोर क्यों नहीं हुआ ? क्या मुझमें भी बोर होने की क्षमता पैदा हो गयी है ? क्या मैं भी बड़ा आदमी हो गया हूँ ?



भविष्य के आदर्शों का निर्माण

पिक्चर के हीरो और हीरोइन ने वाग में उछल-उछलकर गाना गाया; वे दौड़ते हुए पहाड़ों पर चढ़ गये; फिर तालाब की सीढ़ियों पर बैठे और शायद समुद्र के किनारे रेत पर भी भागे दौड़े। इस दौरान उन्होंने आधी दर्जन गाने गाये और अन्त में विवाह कर लिया। हीरो और हीरोइन के विवाह ने हमारा श्रीमती जी से भगड़ा करवा दिया।

वे बोलीं, “तुम अजीब मनहूस आदमी हो। एक भी दिन मुझे लेकर किसी वाग में नहीं गये। हमारे मन में हसरत ही रह गयी कि कभी तुम्हारा हाथ पकड़कर दौड़ते हुए सीढ़ियों से उतर जाते और फव्वारे का पानी डालकर तुम्हें गीला कर देते। पर तुम हो थामड़।”

हम कुछ नहीं बोले। अपनी कमजोरियाँ हम जानते हैं। इसलिए होशियार रहते हैं। हमें मालूम है कि हमने जरा-सी भी फिल्मी स्टाइल अपनाया कि बेड़ा गर्क। हम कभी-कभार दस कदम भागकर बस पकड़ते हैं, दफ्तर की बारह-चौदह सीढ़ियाँ चढ़ते हैं कि दम फूल जाता है, साँस धौंकनी की तरह चलने लगती है। हम कहाँ से पहाड़ों पर भागते हुए गाना गाते फिरेंगे। शादी से पहले, एक जगह लड़की देखने गये थे। वाह-वाही में कह बैठे कि हमें गाना भी आता है। बस हमने लोगों की गाने की फर्माइश पूरी की और सगाई टूट गयी। अब हम नहीं चाहते कि गाना-वाना गाकर अपनी शादी ही तुड़वा डालें।

रही फव्वारे की बात ! तो हम यह भी नहीं चाहते कि वे हमें गीला करें और हम खाँसी-जुकाम का इलाज कराने के लिए शीशियाँ भर-भर कर मिक्स्चर पियें या पैन्सलीन के इन्जेक्शन लगवाते फिरें । एक बार हमारी एक प्रेमिका ने पिचकारी से हम पर रंग डाल दिया और परिणामवश जुकाम ठीक करवाने के लिए हमें पाँच इन्जेक्शन लेने पड़े । अब हमें प्रेमिका की पिचकारी, रंग की पिचकारी कम, डाक्टर की सिरिज ही अधिक लगती है ।

श्रीमती जी, अब तक अपने प्रश्न के उत्तर के लिए हमें घूर रही थीं ।

हमने कहा, “दिल्ली में ऐसा कोई बाग नहीं है जहाँ सीढ़ियाँ भी हों और फव्वारा भी । तुम्हें कहाँ ले चलें ?”

वे और तेज हो गई, “तुम तो कहते थे कि दिल्ली में समुद्र भी नहीं है । तो फिर ‘दिल लेकर हवा मत हो जाना’ उन्होंने कहाँ गाया था ।”

हम कुछ घबराये, पर सँभलकर बोले, “दिल्ली में समुद्र नहीं है, पर समुद्र का किनारा है ।”

उन्होंने नायिका की सौतेली सास के समान अपनी बाँह भ्रमकाई और बोली, “समुद्र का किनारा यहाँ है तो समुद्र तुम्हारी खोपड़ी में है क्या ? किनारे के बाद क्या है ?”

“सुनो भलीमानस ।” हमने समझाया, “समुद्र का किनारा दिल्ली में इसलिए है, क्योंकि सरकार इसे सूखी बंदरगाह बनानेवाली है—ड्राई पोर्ट । किनारे के बाद समुद्र भी होता तो यह गीली बंदरगाह ही होती ।”

“सूखी बंदरगाह कहाँ बनेगी ?” उन्होंने पूछा ।

“सरकारी दफ्तर में ।” हम बोले ।

वे समझ गई कि हम झूठ बोल रहे हैं, क्योंकि सरकारी दफ्तर में वे हमारा हाथ पकड़कर गाना गाने का साहस नहीं कर सकती थीं ।

अन्त में बोली, “चलो पार्क में चलो, वहाँ गाना गायेंगे ।”

हम और घबराये । बोले, “जब मुगल सम्राटों ने बाग बनवाये थे तो साथ ही यह नियम भी बनवा दिया था कि जब फिल्मों के हीरो-हीरोइन

वहाँ प्यार करने आयें तो और कोई वाग में न आये, ताकि वे लोग सुविधा से एकान्त में उछल-कूदकर गाने गा लें। पर वे सम्राट नहीं जानते थे कि फिल्म-संसार के बाहर हम-तुम जैसे महान प्रेमी जोड़े भी होंगे। इसलिए हमारे लिए कोई वैसा नियम नहीं है।”

वे हमारी टालने की आदत से बहुत खीझती हैं। इस बार भी खीझ कर बोलीं, “घामड़ कहीं के। नियम नहीं है तो न रहे। हम बिना नियम के ही दो-एक गाने गा लेंगे तो वाग बिस जायेंगे क्या?”

हम बोले, “वाग तो नहीं बिसेंगे। पर हमने उछल-कूद मचाई और किसी ने हमारी टाँग पकड़ ली तो हम मुँह के बल गिरेंगे और वाग बिसे न बिसे, हमारे दाँत सारे ही बिस जायेंगे।”

“तो नियम बनवाना जरूरी है?” उन्होंने पूछा।

“हाँ ! है तो।”

“तो फिर जल्दी करो।” वे बोलीं, “अभी मुगले-आजम पृथ्वीराज कपूर भी जीवित हैं और मुगल गार्डन्स भी राष्ट्रपति भवन में हैं।”

हमें श्रीमती जी ने लगभग घेर लिया था। पर इतने में स्वयं ही श्रीमती जी की प्रतिभा ने उन्हें दूसरे प्रकार की प्रेरणा दी। बोलीं, “पर सचमुच ही दिल्ली में प्रेम सम्भव नहीं है, नहीं तो इस नाम की कोई पिकचर अब तक बन गयी होती।”

“दिल्ली और प्रेम,” हम बोले, “भगवान का नाम लो। दिल्ली में किसके मन में प्रेम है। यहाँ तो बस कटखन्ने कुत्ते बसते हैं, गुरति हुए—एक दूसरे को काट खाने को तैयार। प्रत्येक नेता दूसरे नेता की हत्या का प्रयत्न इसी शहर में करता है।”

“वही तो हम कर रहे हैं।” श्रीमती जी बोलीं, “लव इन शिमला बनी, लव इन टोक्यो बनी, लव इन पेरिस बनी; पर ‘दिल्ली में प्रेम’ नहीं बनी। दिल्ली में प्रेम करने का कोई मजा नहीं है। प्रेम के लिए या तो आदमी हिल-स्टेशन पर जाये, या विदेश। और सबसे अच्छा तो यह है कि वह वर्ल्ड टूर पर चला जाये। प्रेम की आधुनिकतम प्रवृत्ति यही है।”

हमने कहा, “विल्कुल सही है। पहले हम विश्व यात्रा का

सामान जुटा लें, फिर प्रेम करने की सोचेंगे। घर बैठकर प्रेम किया तो क्या किया।”

“नहीं, ऐसी बात तो नहीं है।” श्रीमती जी बोलीं, “आधे दर्जन गीत तो नायिका ने घर की खिड़की से लगकर ही गाये थे। पर हमारे तो मुहल्लेवाले ही कम्बख्त ऐसे हैं कि क्या कहूँ। यहाँ तो आरती करो तब भी लोग तमाशा देखने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। प्रेम के गीत गाओ तो पता नहीं क्या हो।”

अब श्रीमती जी का ध्यान स्थानों से अधिक गानों पर केन्द्रित हो रहा था, और यह भी हमारे लिये बड़ी भयंकर बात थी। हमने टालने के लिये पूछा, “क्या प्रेम बिना गानों के नहीं हो सकता?”

“पिक्चर में तो नहीं होता।” वे बोलीं, और फिर उन्होंने ठंडी साँस भरी, “खुशनसीब हैं जो पिक्चरों में प्रेम करते हैं। प्रेम क्या होता है जिन्दगी का मजा आ जाता है। घूमते-फिरते हैं, गाते-बजाते हैं, पार्टियाँ अटेंड करते हैं। सारा मुहल्ला, जात-विरादरी और रिश्तेदार उनका विरोध करते हैं। मारधाड़ होती है। प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए लड़ता है, मारता है, मार खाता है ...” उनके चेहरे पर उदासी की राख बिखर गयी, “घर में किसी से प्रेम किया तो क्या किया। यहाँ तो किसी को आँख भर देखा कि माँ-बाप कहेंगे, लड़का अच्छा है शादी कर दो।” उन्होंने गहरी उसाँस ली।

हम देख रहे थे कि हमारी श्रीमती जी का जीवन कुछ तबाह हो गया था और कुछ हो रहा था। हमारा मन पसीज गया—बुरी तरह। हमें भय था कि कहीं इतना न पसीज जाये कि डाक्टरों को आपरेशनकर उसे रुमाल से पोंछना पड़े। पर हम अपने मन की उस समय क्या चिन्ता करते। अपने सामने हम एक अच्छी-भली महिला का जीवन इस त्रासद रूप से वर्वाद होते देख रहे थे। भला कोई बात है—किसी व्यक्ति को ढंग से प्रेम करने का भी अवसर न दिया जाये।

हमें निष्ठुर समाज पर बहुत-बहुत क्रोध आया। आखिर यह समाज इतना हृदयहीन हो गया है। वह किसी का हँसना-बोलना क्यों नहीं देख सकता। यदि यह समाज श्रीमती जी के मेरे साथ विवाह का विरोध

करता, रुकावटें डालता तो श्रीमती जी को विरह के, उदासी के गाने गा लेने का अवसर मिल जाता। उनके पिताजी उन्हें दो रोज भूखे कोठरी में बन्द रखते तो उनकी प्रेम-भावना को कितनी तृप्ति मिलती। हम उनकी गली में जाते और समाज के ठेकेदार यदि हमें दो-चार पत्थर मारकर हमारा सर फोड़ देते, हमें लड़ने, हाथापाई करने का अवसर दे देते तो उनका क्या विगड़ जाता। श्रीमती जी सुनतीं कि हम उनके पीछे पिटे हैं और घायल होकर अस्पताल में पड़े हैं तो उन्हें कितना अच्छा लगता। हो सकता है कि अस्पताल में पड़े-पड़े हमारे मन में विरह की पीड़ा जागती, करुणा जागती और हम भी कोई गाना गा सकते। पर हाय रे दुष्ट समाज! तूने हमें वह अवसर नहीं दिया!

हमें लगा कि हमारे मन में इस समाज के लिए अपार घृणा है। हम इस समाज से बहुत दूर चले जायेंगे। बहुत दूर। जहाँ आस-पास कोई हो। (पर श्रीमती जी से पहले पूछ लेंगे, कि समाज से इतनी दूर जाकर, घर के काम के लिए कोई नौकर न मिला तो वे घर का काम हमसे तो न करवायेंगी। और हाँ, परिवहन व्यवस्था से भी पूछना पड़ेगा, कि उतनी दूर से हमें दफ्तर तक लाने के लिए वे लोग किसी बस का प्रबन्ध कर देंगे न।)

धीरे-धीरे हमें लगने लगा है कि हम अपने वर्तमान से बहुत दुखी हो गये हैं। उचित ढंग से प्रेम कर सकने का अवसर न दिये जाने के कारण हमारे मन में पचासों ग्रंथियाँ पैदा हो गयी हैं। वर्तमान में हमारे लिये कुछ नहीं रह गया है। हमारे लिए एकमात्र आशा हमारा भविष्य है। हम अपने भविष्य के आदर्शों का निर्माण, पिकचरें देख-देखकर कर रहे हैं। हाय! कभी तो हम भी पिकचर के हीरो-हीरोइन के समान प्यार कर सकेंगे।

पुनश्च:—भविष्य के आदर्श गढ़ने के सिलसिले में, पिकचरों पर हमारा इतना खर्च होने लगा है कि पैसे की तंगी के कारण घर में रोज ही झगड़ा हो रहा है।



कुश्ती और भक्ति

एक ड्राइंग मास्टर के भारत-केसरी बन जाने से परिस्थितियाँ बहुत बदल गयी हैं। पहले यह माना जाता था कि मास्टरों का लड़ाई-फसाद, दंगल-वंगल से क्या सम्बन्ध। पर अब मास्टर लोग स्कूलों और कालेजों के लड़कों को भड़काते रहते हैं और लड़कों की हर लड़ाई के मूल में कोई-न-कोई मास्टर होता है। कहते हैं कि महाभारत के मूल में भी एक मास्टर ही था—द्रोणाचार्य और राम को ताड़का से भी एक मास्टर विश्वामित्र ने ही लड़वाया था। मध्ययुग में हमारे मास्टर अपना कर्तव्य भूल गये थे। आधुनिक युग में मास्टर फिर से चेतते हैं और प्रत्येक स्कूल-कालेज में उथल-पुथल हो रही है। लड़ाई से मास्टरों के इस सम्बन्ध पर आधिकारिकता की मुहर लगवा दी एक ड्राइंग मास्टर ने, जो भारत-केसरी बन गया।

तब से यह मान लिया गया कि कुश्ती का ज्ञान भी—कम-से-कम सिद्धान्त पक्ष का—सामान्य ज्ञान के अन्तर्गत माना जायेगा और प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति, विशेषकर मास्टर को उसके विषय में पूरा ज्ञान होना चाहिए। मास्टरों ने कुश्ती का ज्ञान पाया तो क्लास में पढ़ाने लायक उसका वर्गीकरण भी कर लिया।

कुश्तियाँ सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं : भारतीय और पाश्चात्य। पर एक विशेष प्रकार की कुश्ती और होती है। उस कुश्ती में पहलवान

लोग भाग नहीं लेते, सामान्य जनता भाग लेती है। उसमें अनिवार्य शर्त यह है कि कुश्ती में भाग लेनेवाली जनता कपड़े उतारकर दंगल में नहीं उतरेगी। उसके लिए ढंग का अखाड़ा भी नहीं होता—वस दीवार में बनी एक खिड़की के सामने यह कुश्ती होती है। उस खिड़की का नाम है टिकट की खिड़की; और लड़नेवालों में मास्टर कम, विद्यार्थी ही ज्यादा होते हैं।

जापान के जूडो के समान, यह भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय खेल है। सिनेमा के हर शो से पहले लड़के अपने माँ-बाप से पैसे लेकर यह खेल खेलने के लिए घर-घर से ऐसे ही निकल पड़ते हैं, जैसे महात्मा गांधी के आह्वान पर देश की स्वतन्त्रता के लिए निकल पड़े थे। पहले जाकर खिड़की के सामने बड़ी शान्ति से खड़े रहते हैं और जैसे ही बुकिंग क्लर्क खिड़की का पट खोलकर खेल आरम्भ होने का सिग्नल देता है, वे पिल पड़ते हैं। एक बार यह खेल आरम्भ हो जाये तो फिर कोई नियम नहीं रह जाता। दुनिया की हर प्रकार की कुश्ती में कोई-न-कोई नियम होता है, किन्तु इस कुश्ती में कोई नियम नहीं होता। हाथों-पैरों, घुँसों-मुक्कों, यहाँ तक कि जूतों तक के खुले प्रयोग की अनुमति होती है। इसमें राऊंड का भी कोई हिसाब नहीं होता। जो व्यक्ति अपनी शक्ति और साहस से इस प्रकार लड़ता-भिड़ता, टिकट की खिड़की तक जा पहुँचता है और बुकिंग क्लर्क के हाथ से टिकट छीन लेता है, वह स्वयं को विजयी मानकर इस कुश्ती से रिटायर हो जाता है। और लोग भी उसे कुछ नहीं कहते। ट्राफी जीत लेनेवाले को क्या कहना ?

सिनेमा देखने जानेवाले लोगों में दस प्रतिशत के लगभग लोग ऐसे भी होते हैं, जिन्हें इस खेल में रुचि नहीं है। उनमें से बहुधा लोग एक और प्रकार के खेल के मँभे हुए खिलाड़ी होते हैं। उस खेल का नाम है, 'डाकू-जासूस-खेल।' इसका सम्बन्ध राजनीति से अधिक है। वे लोग पुलिस की कुत्ता-टोली (डागस्क्वैड) के कुत्तों के समान इधर-उधर लपकते-भपकते व्यक्ति को सूँघते फिरते हैं : कहीं इसके पास तो टिकटें नहीं, कहीं उसके पास तो टिकटें नहीं। और अन्त में वे लोग किसी-न-किसी ऐसे व्यक्ति को ढूँढ़ ही लेते हैं, जो ब्लैक में टिकटें बेच रहा होता है। वे लोग

सिनेमाई पुरोहित कहलाते हैं। उनके पास अपने यजमानों के लिए टिकटें सदा तैयार रहती हैं। किसी भी समय कोई भी यजमान, टिकट के पैसे और पुरोहितजी की दक्षिणा देकर टिकटें प्राप्त कर सकता है।

हाल के भीतर स्थिति कुछ बदली हुई होती है। हाल एक बहुत बड़े अखाड़े के समान है, जहाँ भारत-केसरी के शिष्य इकट्ठे हुए होते हैं और उनमें से कोई भी अपने गुरु 'भारत-केसरी' के विरुद्ध कुछ नहीं सुन सकता। भारत-केसरी का रूप भगवान के अवतारों के समान कुछ बदल अवश्य जाता है—वह वहाँ पिक्चर के नायक के रूप में प्रकट होता है। शिष्यों में से कोई सिनेमा-दंगल जीतकर हाल के भीतर आया है, कोई स्कूल-कालेज से भागकर आया है, कोई बेचारी रोटियाँ सेंकती उठ धाई है। इसलिए उनमें धैर्य कम होता है और मार-पीट, लड़ाई-झगड़े की प्रवृत्ति अधिक होती है। इज्जतदार लोगों को उनसे बचकर रहना चाहिये।

मैंने जब तुलसीदास की वे पंक्तियाँ पढ़ी थीं, जिनमें वे कहते हैं कि राम को देखने के लिए लोग अपने कामों को जहाँ-का-तहाँ छोड़कर उठ भागे, तब मैंने तुलसी का विश्वास नहीं किया था। पर जब सिनेमा के नाम पर लड़के-लड़कियों को इस बेहाली में भागते पाया तो मान गया कि तुलसी गुरु ने ठीक ही कहा है। उनके वर्णन के अनुसार, राम किसी भी फिल्म ऐक्टर से कम आकर्षक नहीं थे।

जब कभी माँ-बाप या बड़े भाई-बहन इन भक्तों को इस बेहाली में काम-धाम छोड़कर दीवानावार भागने से रोकने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें समझाने-बुझाने का प्रयत्न करते हैं तो घर में जो दंगल होता है उसे बम्बई-पलायन-दंगल कहते हैं। उस दंगल के पश्चात् बहुधा लड़के बम्बई भागते दिखायी पड़ते हैं और घर से कुछ गहने-कपड़े और नकद रुपया भी उनके साथ भाग जाता है। इस प्रकार की भाग-दौड़ में बहुत सारे रुपये-पैसे के साथ-साथ प्यार भी भाग जाता है। जैसे पीनेवालों का, न पीने-वालों के प्रति प्यार बहुधा भाग जाता है, वैसे सिनेमा भक्तों का अभक्तों के प्रति प्यार भाग जाता है।

पिक्चर शुरू हुई तो भक्तों की प्रशस्तियाँ आरम्भ हो जाती हैं :

“वाह गुरु ! क्या ऐक्टिंग है।”

“वाह ! क्या गाया । मर गये । हम फिदा हो गये ।”

“ओह ! होय ! होय ! जान ले गया ।”

किसी अभक्त को ये प्रशस्तियाँ अच्छी न लगें और वह शान्त-चित्त होकर पिकचर देखना चाहे तो उसे भक्तों को टोकना पड़ेगा । और भक्त हैं सब-के-सब पहलवान ! तब बेचारे अभक्त की बड़ी दुर्दशा होती है । वह भी सोचता है कि वह नास्तिक होकर आखिर मंदिर में आया ही क्यों ? ऐसे समय में होनेवाले दंगल को धार्मिक विश्वासों के कारण क्रुसेड-वार कहते हैं ।

कभी-कभी तो पर्दे पर काम करनेवाले ऐक्टर भी भक्तों के हाथों पिट जाते हैं । भक्ति का उन्माद है, कोई साधारण बात नहीं । और भक्त अपने भगवान के विरुद्ध कुछ नहीं सुन सकता । पर्दे पर किसी ऐक्टर ने हीरो को डाँट दिया कि हाल में भक्त उठकर खड़ा हो गया, “चुप बे हरामजादे ! मार-मारकर भुरकस बना दूंगा ।”

वह तो गनीमत हुई कि पिकचर हो रही थी और वह ऐक्टर वहाँ हाड़-मांस में उपस्थित नहीं था, नहीं तो बेचारा डर के मारे अवश्य कह देता कि इसमें उसका कोई दोष नहीं है । सारा दोष तो डायरेक्टर का था । यदि डायरेक्टर ने उसे हीरो को डाँटने के लिए पैसे न दिये होते तो वह कभी भी हीरो को डाँटने का दुस्साहस न करता । और तब डायरेक्टर का क्या हथ्र होता भक्तों के हाथ ?

वैसे भक्ति के इस क्षेत्र में हमारा युवक वर्ग काफी पिछड़ा हुआ है । उसके विश्वास और श्रद्धा में अभी काफी कमी है । नहीं तो बम्बई कितनी दूर है भला ? भागे-भागे बम्बई गये और हिरोइन को तंग करनेवाले विलेन को और उसे वैसा करने के लिए उकसानेवाले डायरेक्टर को पीट आये । मुझे पूरा विश्वास है कि वह समय शीघ्र ही आनेवाला है जब पिकचरों में हीरो-हिरोइन को तंग करनेवाले लोगों को वैसा रोल करने से पहले अपनी एक-एक हड्डी का बीमा करवाना पड़ेगा । मैं अपने युवक-वर्ग के भविष्य से एकदम निराश नहीं हूँ । वह समय शीघ्र ही आनेवाला है, जब प्रत्येक युवक अपने प्रिय अभिनेता अथवा अभिनेत्री का चित्र किसी धातु में मढ़वाकर उससे अपने कंठ को सुशोभित करेगा—‘जब जरा

गर्दन भुकाई देख ली ।'

इस क्षेत्र का महादंगल तब होता है जब किसी अभिनेता या अभिनेत्री का किसी नगर में आगमन होता है । तब तो कुश्ती-फैस्टिवल ही हो जाता है । अभिनेता या अभिनेत्री को घूरते हुए पुलिसवालों की लाठियाँ भीड़ पर इस प्रकार चलती हैं—जैसे इत चितवत, उत धार चलावत... । और फिर कुश्तियों की बहार । मुझे लगता है कि भक्ति और कुश्ती में बहुत गहरा सम्बन्ध है । भक्तशिरोमणि हैं हनुमानजी और पहलवानों के आदि गुरु हैं वजरंग बली ! तभी तो मैं कहता हूँ कि भक्त वही है, जो पहलवान है और पहलवान वह है जो भक्त है । इस प्रकार देश में भक्तों की जितनी वृद्धि होगी, पहलवान भी उतने ही बढ़ेंगे । मैं फिल्म-इंडस्ट्री का आभारी हूँ कि उसने इस देश में करोड़ों पहलवान पैदा कर दिये हैं और हजारों प्रकार की नई कुश्तियों का आविष्कार किया है ।

●●

रेडीमेड युद्ध-विराम

मैं जब कभी हॉल में बैठा पिक्चर देख रहा होता हूँ तो मेरे आस-पास बैठे लोग मुझसे काफी परेशान हो उठते हैं। पर मेरा उसमें कोई दोष नहीं है। दोष मुझे ज्योतिषी बनानेवालों का है। बम्बई में बैठे-बैठे फिल्म बनानेवालों ने मुझे ज्योतिषी बना दिया है। बात यह है कि मेरे चारों ओर जितना अँधेरा होता है, मेरी बुद्धि में उतना ही उजाला होता है। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि आगे क्या होने जा रहा है। जैसे ही पिक्चर का हीरो किसी बड़े सेठ के घर ड्राइवर, चौकीदार या ऐसी ही कोई छोटी-मोटी नौकरी कर लेता है; मैं भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि उस सेठ की एक युवती, सुन्दरी तथा प्रेम करने को आतुर सुपुत्री होगी। वह अवश्य ही हीरो से प्रेम करेगी और हिरोइन का स्थान ग्रहण करेगी। लड़की का बाप या भाई लड़की को भी डाँटेंगे और लड़के यानी हीरो को भी। उत्तर में हिरोइन ऐसे करारे-करारे सामाजिक-न्यायवाले डायलॉग बोलेंगी कि जिनको सुनकर प्रत्येक साम्यवादी दल उसे अपनी अध्यक्षा बनाना स्वीकार कर ले।

और जब आगे होनेवाली इतनी बातें मेरी समझ में पहले से ही आ जाती हैं तो मुझसे रहा नहीं जाता। ज्योतिष की शक्ति वे बातें मेरे मुँह से उच्चरित करवा देती है और मेरे आस-पास बैठे लोग मुझसे परेशान हो उठते हैं।

दुनिया में एक भगवान है, जिसकी कोई बात मेरी समझ में नहीं आती। उसकी समझ के साथ मेरी समझ की पटरी नहीं बैठती। पर, पिक्चर के भगवान को मैं बड़ी अच्छी तरह जानता हूँ। वह मेरे ज्योतिष को अच्छी तरह मानता है; इसलिए मैं भी उसका प्रशंसक हूँ। यदि हीरो की माँ भगवान की मूर्ति के सामने बैठी, होठों पर बड़ी दिव्य मुस्कान लिये भजन गा रही होगी तो निश्चित रूप से मैं भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि मूर्ति के सामने जलते हुए दीपक को भगवान फूँक मारकर बुझा देंगे और हीरो किसी दुर्घटना में उलझ जायेगा। यदि वह माँ हीरो की माँ न होकर किसी और की माँ होती तो दीपक बुझने के साथ-साथ उसके बेटे की मृत्यु भी हो सकती थी। पर हीरो की मृत्यु पिक्चर के बीच में नहीं हो सकती। पिक्चर को तीन घंटे हो गये हों तो वह मर भी सकता है।

एक और चीज है, जो अपनी आयु के बीच में नहीं मरती। वैसे जमाना बड़ा खराब है। किसी भी चीज की सम्पूर्णता की बात आप दावे के साथ नहीं कह सकते। कैसे कहेंगे? केन्द्रीय सरकार के बड़े-बड़े मंत्रियों के भाषणों के पूरे होने की बात भी गारंटी से नहीं कही जा सकती। बड़े-बड़े पुलिस कप्तान मुँह देखते रह जाते हैं और छोटे-छोटे लड़के मन्त्रीजी को ढेले मार, माइक छीनकर ले जाते हैं। पर यह धाँधली पिक्चर में नहीं चलती। वहाँ तो हिरोइन ने विरह का गीत गाया और हीरो अपने स्थान से घोड़े पर, कार में, गाड़ी में, हवाई जहाज में सरपट भागा। हिरोइन गाये जायेगी और हीरो सरपट भागा जायेगा; पर मजाल है कि गाना समाप्त होने से पहले वह कभी पहुँच जाये। पर्फेक्ट मिलिटरी डिसिप्लिन है। गीतकार ने पूरे बोल लिखे हैं, संगीतकार ने पूरी धुन बनायी है—हिरोइन ही कैसे उसे अधूरा छोड़ दे।

अपवादस्वरूप एक बार एक प्रेमी साहब, प्रेमिका का गाना पूरा होने से पहले पहुँच गये थे। उन्हें देखकर प्रेमिका ने गाना रोक दिया। तब प्रेमी को अपनी गलती का अनुभव हुआ। बेचारा पसीना-पसीना हो गया। एक ओर तो इस गलती का अनुभव कि गाना पूरा होने से पहले क्यों आया, डायरेक्टर की डाँट का भय और फिर घबराहट के पसीने से मेक-अप

के धुल जाने की चिन्ता । आखिर, बेचारे ने बड़ी माफियाँ माँगीं और प्रेमिका से अनुरोधकर गाना पूरा सुना । तब तक चुपचाप बैठा रहा, बीच में एक बार भी नहीं बोला ।

यह बीच में दूसरी ही बात आ गयी । भगवान के विषय में मेरा ज्योतिष बीच में ही छूट गया । कभी-कभी पिक्चर के तीन घंटे पूरे होने से पहले ही हीरो बुरी तरह से घायल हो जाता है या जल जाता है । तब हिरोइन पूरी थाली सजाकर भगवान की मूर्ति के सामने जा पहुँचती है । रेडियो में रोज बजनेवाला, पहले से याद किया हुआ एक बड़िया फिल्मी भजन गाती है और थाली में लाये गये फूल भगवान की मूर्ति पर हल्के से टिका देती है । फिर, गीत की अन्तिम पंक्ति को बार-बार ऊँचे स्वर में दुहराते हुए मूर्ति की चौकी को हिला देती है । वस, मूर्ति की बाँह या हाथ पर हल्के से टिकाया हुआ फूल झट से गिर पड़ता है । वह भगवान का प्रसाद हो जाता है और हीरो मौत के मुँह में से बच जाता है; हिरोइन सती-साध्वी मान ली जाती है ।

ऐसे जवर्दस्ती वरदान लेने के उदाहरण हमारे पुराणों में भी बहुत हैं । पर एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि बूढ़ी माँ भजन गाती है तो भगवान दीपक क्यों बुझा देता है और युवती प्रेमिका गाना गाती है तो वह फूल क्यों गिरा देता है । जब कि दोनों ही भजन पीछे से एक ही पार्श्वगायिका गा रही होती है । शायद यह भगवान का रसिक रूप है ।

भगवान की महिमा अपार है । भगवान की क्या कहें संगीत की भी महिमा अपार है । जिस प्रकार भगवान आनन्दस्वरूप है, वैसे ही संगीत भी आनन्दस्वरूप है । होता क्या है कि हीरो-हिरोइन के पीछे बदमाश छुरे और पिस्तौलें लेकर पड़े हैं, घोड़े या जीपें दौड़ रही हैं, या टाइम बम घर के नीचे लगा हुआ है जिसके फटने का समय समीप से समीपतर आता जा रहा है । कहानी, चन्द्रमा पर जानेवाले रॉकेट की गति से आगे बढ़ती जा रही है । दर्शक अपना दिल हथेलियों में पकड़े उसमें से बाहर वह जाने को उत्सुक रक्त को दवाये, पंजों के बल, साँस रोक स्तंभित खड़े हैं और सहसा हीरो-हिरोइन संगीत के आनन्द में डूब जाते हैं । वे जंगलों में, पहाड़ों में या पार्क में बैठे मजे से प्यार भरे गीत गाते हैं ।

सारी चिन्ताओं का नाश हो जाता है : 'कहत कवीर आनन्द भयो है वाजत अनहद ढोल रे ।'

कभी-कभी तो मुझे लगता है कि संगीत अणु-छत्री से कम नहीं है, जिसकी सीमाओं का अतिक्रमण न तो कोई दुष्ट जन कर सकता है, न दुष्ट विचार । जहाँ कहीं स्थिति बहुत तनावपूर्ण हुई और आपने संगीत की छत्री खोली और बैठते संगीत में भीगते रहे—न किसी का भय, न चिन्ता, न उत्सुकता, न दम फूले, न साँस चढ़े, न सुर टूटे, न ताल कटे !

मेरी तो राय है कि संगीत की इस विशेषता का लाभ हमें अपने राष्ट्रीय जीवन में उठाना चाहिए । जहाँ कहीं सूचना मिली कि शत्रुओं के टैंक बढ़ते आ रहे हैं, वायुयान ऊपर मँडरा रहे हैं, तुरन्त प्रधान मन्त्री और उप-प्रधान मन्त्री मिलकर गाना गाने लगें । संगीत की शक्ति से टैंकों की बेल्ट टूट जायेगी, वायुयानों के पंख झड़ जायेंगे और शत्रु अपने स्थानों पर स्तंभित हो जायेंगे । गीत पूरा होने से पहले शत्रु नहीं आ सकते इसलिए महाभारत का अखण्ड पाठ गा-गाकर करना चाहिए । न संगीत समाप्त होगा, न शत्रु आयेंगे ।

युद्ध के क्षेत्र में लड़ते-लड़ते थक गये तो गीत गाने लगे, अपने-आप ही युद्ध-विराम हो जायेगा । कितना भी भयंकर युद्ध क्यों न हो गीत की आवाज से गोलियाँ चलनी बन्द हो जाती हैं । बारह-बारह, चौदह-चौदह घंटों के युद्ध-विराम के लिये लोग अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर गोष्ठियाँ और सभायें करते हैं, लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करते हैं । क्या उससे अच्छा यह नहीं है कि दस-पाँच सैनिकों को गाने की ड्यूटी पर लगा दिया जाये !

पर इतनी बात कहने के पश्चात् मुझे कुछ संकोच हो रहा है । हो सकता है, ये सारी विशेषताएँ संसार के समस्त संगीत में न होकर, केवल हिन्दी के फिल्मी गानों में ही हों । इस बात को एक नये राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से स्वीकार कर लेना चाहिए । हमें अपनी फिल्में सारे संसार में प्रदर्शित कर, अपने फिल्मी गीतों की इन विशेषताओं का प्रचार करना चाहिए । प्रत्येक देश के भारतीय दूतावास के साथ एक फिल्मी-गीत-परामर्शदाता होना चाहिए । तब देखिये, सारे संसार में हमारे गीतों के

रिकार्ड किस तेजी से खपते हैं । अकेले वियतनाम में ही करोड़ों रिकार्ड बिक जायेंगे—मिनि-युद्ध-विरामों के लिए ।

हमें अपनी सीमाओं पर तो ग्रामोफोन कम्पनियों की प्रदर्शनियाँ ही लगा देनी चाहिए । उधर से गोली और इधर से रिकार्ड बजा । बस ! न मीटिंग, न बैठक और युद्ध-विराम । इसको कहते हैं, रेडीमेड युद्ध-विराम !

• •

मन्दिर और स्कूल

हमारे मुहल्ले का भी भाग्योदय हुआ। हमारे मुहल्ले के एक व्यक्ति को सत्य का साक्षात्कार हुआ। सत्य को आमने-सामने देखकर वह बहुत चौखलाया और महीनाभर मुहल्ले में इधर-उधर मँडराता फिरा। परिणाम यह हुआ कि मुहल्ले में एक कमेटी बन गयी। कमेटी का नाम था मन्दिर-कमेटी। मन्दिर-कमेटी जब मेरे घर आयी तो मुझे उस व्यक्ति के सत्य के साक्षात्कार करने की कथा मालूम हुई थी।

उन्होंने बहुत भेद भरे स्वर में मुझे बताया, “आपको पता है, हमारे मुहल्ले में कोई मन्दिर नहीं है।”

“नहीं है तो क्या हुआ ?” मैंने पूछ लिया।

उन्होंने कहा, “भगवान रहेगा कहाँ ?”

मैंने पूछ लिया, “आपका भगवान एक ही है न ?”

उन्होंने स्वीकार कर लिया कि एक ही है।

“फिर तो वह एक ही जगह रहेगा, गली-गली उसका मन्दिर बनाने का क्या लाभ ?” मैंने पूछ लिया।

उन्होंने कहा, “भगवान रहेगा तो एक ही जगह, पर उसका स्थान तो हर मुहल्ले में होना ही चाहिए। इतनी बात तो आप मानेंगे न ?”

“मैं समझ गया,” मैंने उन्हें बताया, “मैं एक सज्जन को जानता हूँ जो स्वयं सपरिवार बम्बई में रहते हैं, किन्तु दिल्ली, जयपुर और चण्डीगढ़

आदि नगरों में उन्होंने बड़ी-बड़ी कोठियाँ किराये पर ले रखी हैं। हजारों रुपया किराये का प्रतिमास देते हैं, पर उन कोठियों में रहता उनका चौकीदार ही है, या फिर उनके मित्र विहार करते हैं। पर सज्जन तो अपना इन्कम टैक्स बचाने के लिए ऐसा करते हैं, आपके भगवान को ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी है। क्या यह भी इन्कम टैक्स का मामला है ?”

“सरकार भी तो जगह-जगह रेस्ट-हाउस बनाती है, वह क्या इन्कम टैक्स बचाने के लिए है ?” वे नाराज हुए।

“सरकार के पास फालतू पैसा है।” मैंने कहा, “वह बनवा लेती है।”

“हमारे मुहल्ले के भगवान को दूसरे मुहल्ले के मन्दिर में रहना पड़ता है। यह क्या शर्म की बात नहीं है ?” उन्होंने पैतरा बदला।

“और हमारे मुहल्ले में जो स्कूल नहीं है और हमारे बच्चों को दूसरे मुहल्लों के स्कूलों में पढ़ने जाना पड़ता है...” मैंने कहा।

“आपकी बात बहुत ठीक है।” कमेटी ने मुझे बताया, “पर भगवान को हमारे मुहल्ले में एक मन्दिर न मिला और वह इस मुहल्ले से रूठ गया तो ?”

“और यदि हमारे बच्चे स्कूल न होने के कारण अपने मुहल्ले से रूठ गये तो ?” मैंने पूछा।

“वह तो ठीक है, पर भगवान को रहने के लिए मन्दिर तो चाहिये।” वे बोले।

“यह भी ठीक है, पर बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल भी तो चाहिये।” मैंने कहा।

“तो ?” इस बार उन्होंने पूछा।

“यदि बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल न मिला तो हमारे बच्चे आवारा हो जाएँगे।” मैंने कहा, “भगवान को रहने के लिए मन्दिर न मिला तो उसके आवारा बनने की कोई सम्भावना है क्या ?”

उन्होंने अचरज से मुझे देखा और हँस पड़े, “मजाक छोड़िये। आखिर हमें अर्थात् समाज को मिलने-जुलने के लिए कोई स्थान भी तो चाहिये। आप मन्दिर में जायेंगे तो अच्छे-अच्छे लोगों से मिलेंगे।”

मैं कुछ-कुछ कंठिस हो चला । वस्तुतः मन्दिर में अच्छे लोग ही होते हैं । पर अच्छे लोगों की परिभाषा क्या है ? मैंने कहा, "मैं कई मन्दिरों में गया हूँ, वहाँ या तो बूढ़ी स्त्रियाँ होती हैं या फिर श्रद्धालु वृद्ध ! क्या कम आयु के लोगों में कोई अच्छा आदमी नहीं होता ?"

"होते हैं । उन्हें भी हम खोज निकालेंगे ।" वे हँस पड़े, "पहले मिलने का स्थान तो होने दीजिए ।"

"मिला तो स्कूल में भी जा सकता है ।" मैंने कहा, "फिर स्कूल में मिलने से कुछ चर्चा होगी, वादविवाद होगा, मानसिक विकास होगा ।"

"देखिये ।" वे तमककर बोले, "मुझे आपकी यह मानसिक विकास-वाली योजना एकदम पसन्द नहीं है । जिसे आप मानसिक विकास कहते हैं, मैं उसे बदतमीजी और विद्रोह मानता हूँ ।"

"तो आप मानसिक विकास को पसन्द नहीं करते ?"

"नहीं ।"

"तो मन्दिर किसलिए बनवा रहे हैं ?"

"आत्मा के विकास के लिए ।"

"आत्मा के विकास से क्या होगा ?" मैंने पूछा ।

"आपके मानसिक विकास से क्या होगा ?" उन्होंने पूछा ।

"हमारे वच्चे कल समझदार युवक बनेंगे । अपने घर-बार और देश को अच्छी तरह चलायेंगे ।" मैंने कहा ।

"और आत्मा के विकास से यह देश महात्माओं से भर जाएगा ।" वे बोले ।

"महात्मा लोग स्वयं कमाते नहीं हैं ।" मैंने कहा, "खाते देश का हैं और काम भगवान का करते हैं । उन सारे महात्माओं को खिलायेगा-पिलायेगा कौन ?"

"भगवान !"

"भगवान इतना शक्तिशाली है क्या ?" मैंने पूछा ।

"भगवान सर्वशक्तिमान है !" उन्होंने कहा ।

"तो उसके मन्दिर की चिन्ता आप क्यों करते हैं ?" मैंने कहा,

"भगवान सर्वशक्तिमान है, अपना मन्दिर स्वयं बनवा लेगा । हमारे

वच्चे बड़े अशक्त हैं। स्वयं कुछ नहीं कर सकते, उनके लिए एक स्कूल बनवा दीजिए।”

“हमने प्रत्येक काम का ठेका नहीं ले रखा है।” वे बोले, “स्कूल बनवाना सरकार का काम है।”

“आपको यह किसने बताया कि मन्दिर बनवाना आपका काम है?” मैंने पूछा।

“देखिये।” उन्होंने मुझे समझाया, “आप बहुत जिद्दी मालूम पड़ते हैं। स्कूल तो चारों ओर अपने-आप ही खुलते जा रहे हैं—अच्छे-अच्छे स्कूल, अंग्रेजी माध्यम के स्कूल। पर मन्दिर अपने आप नहीं बनते, मन्दिर बनवाने पड़ते हैं, ताकि अपने आप खुले उन स्कूलों में पढ़नेवाले वच्चे बड़े होकर मन्दिर भी जा सकें।”

मैंने भी उन्हें समझाया, “जिन वच्चों का आपको इतना ध्यान है और जिनके बड़े होने पर, उनकी आवश्यकता पूरी करने के लिए आप मन्दिर बनवा रहे हैं, अपने आप खुले स्कूलों में पढ़कर जब वे बड़े होंगे तो आपके मन्दिरों के बैरी बन चुके होंगे। पहले मन्दिर जानेवालों को संभालिए, फिर मन्दिर बनवाइयेगा।”

“यदि कोई मन्दिर नहीं आना चाहता तो न आये। हमारा क्या विगड़ता है?” वे बोले।

“तो फिर मन्दिर किसके लिए है?” मैंने पूछा।

“भगवान के लिए।” उनका उत्तर था।

“तो चन्दा भी जाकर भगवान से माँगिये।” मैंने कहा।

“आप नास्तिक हैं।” वे बोले।

“और आप अगली सारी पीढ़ी को नास्तिक बना और बनवा रहे हैं।” मैंने कहा।

“आप भगड़ालू हैं।” वे बोले।

“आप अदूरदर्शी हैं।” मैं बोला।

और कमेटी ने गुस्से में आकर मेरा नाम सूची से काट दिया। अब जब कभी मन्दिर बनेगा, मुझे उसमें घुसने भी नहीं दिया जायेगा।



तीन लघु-कथाएँ

● पति-पत्नी

“अजी पराँठा लेंगे आप ?”

“नहीं।”

“ले लें न।”

“नहीं, जरूरत नहीं है।”

“अजी एक तो ले लें।”

“नहीं भई, नहीं।”

पत्नी नाराज हो जाती है, “कोई खाये ही नहीं तो पकानेवाले को खाक मजा आयेगा।”

“थाली में डाले हुये को कोई फेंक थोड़ी देगा।” पति जाकर पलंग पर आँधे लेट जाते हैं, “खिलाने की नीयत न हो तो कोई किसी को मजबूर थोड़ी कर सकता।”

● फेरीवाला

काँल बेल बजती है।

“कौन है भई, देखना।” गृहस्वामी कहते हैं।

“जाने कौन आ गया।” गृहस्वामिनी बड़बड़ाती हुई दरवाजा खोलती हैं।

“सब्जी वहन जी ।” फेरीवाला कहता है ।

“घण्टी किसने बजायी थी ?” गृहस्वामिनी पूछती हैं ।

“जी, मैंने ।” फेरीवाला कहता है, “आपने कल कहा था कि सब्जी के लिए रोज पूछ जाया करूँ ।”

“पूछने के लिए कहा था, घण्टी बजाने के लिए तो नहीं कहा था ।” गृहस्वामिनी नाराज हो जाती हैं ।

“पूछने के लिए ही तो घण्टी बजायी थी ।” फेरीवाला कहता है, “क्या दे दूँ — टींडा, भिंडी, तोरी...”

“मैंने तुमसे कहा न कि तुम घण्टी न बजाया करो ।” गृहस्वामिनी और भी नाराज हो जाती हैं ।

“अच्छा घण्टी नहीं बजाया करूँगा ।” फेरीवाला कहता है, “साहब का नाम लेकर पुकारा करूँ या आपका ?”

“वकवास मत करो ।” गृहस्वामिनी कहती हैं ।

“सब्जी लेनी नहीं, लवानी नहीं और समझेंगे अपने को धन्ना सेठ ।”

फेरीवाला साइकिल की घण्टी बजाता आगे बढ़ जाता है ।

● नयी पड़ोसिन

“...अजी लो । हद हो गयी । नयी-नयी जान-पहचान है तो क्या हुआ । आखिर हम पड़ोसी तो हैं न । हम आपके साथवाले बँगले में रहते हैं । कोई दूर जगह है क्या ? आपके बँगले के सामने से होकर ही तो रोज अपने स्कूटर पर दफ़्तर जाते हैं । आपने तो हद ही कर दी मिसिज कैलाश । भला कैलाश साहब को टैक्सी में दफ़्तर जाने की क्या आवश्यकता है ? इनके साथ स्कूटर पर दफ़्तर क्यों नहीं जाते ? टैक्सी पर रोज इतना खर्च करने की क्या जरूरत है ? हम तो चाहते हैं कि इनके साथ कोई चला जाये । आजकल जाते हैं मिस्टर भंडारी । दफ़्तर के समय से बहुत पहले ही रास्ता रोके खड़े रहते हैं ? जरा भी शरम नहीं आती उन्हें । भला हम उनके नौकर हैं क्या ? भई इतना ही शौक है तो अपना स्कूटर क्यों नहीं खरीद लेते । मैं तो इनसे कहनेवाली हूँ कि

भण्डारी के बँगले का रास्ता ही छोड़ दें। किसी और रास्ते से निकल जाया करें... आप कह दीजियेगा, कैलाश साहब टैक्सी पर क्यों ऐसे चरवाद करते हैं...?"

●●

खबरें : हमारी और उनकी

रोज सवेरे उठकर मैं भले आदमियों के समान समाचारपत्र अवश्य पढ़ता हूँ। पता नहीं क्या बात है मैंने बहुत सारे पढ़े-लिखे परिवारों को देख परखकर यही पाया है कि पत्नी और समाचारपत्र में शाश्वत वैर है। अब पत्नी की बात आ ही गई है तो कह ही डालूँ। बहुत दिनों से मेरे मन में पत्नी को लेकर एक बात है, पर आज तक कहने का अवसर ही नहीं मिला। मुझे सदा यही लगा है कि मैं उसे अपनी बात करता हूँ, या कोई भी व्यक्ति जब अपनी बात करता है तो वह बात बड़ी इंटलेक्चुअल होती है, पर बात जैसे ही पत्नी पर आती है, पता नहीं क्यों वह बड़ी निम्न स्तर की और अवौद्धिक हो जाती है। बहुत सारे लोगों ने : वैसे लोगों का पूरा सम्प्रदाय है : केवल पत्नी को लेकर ही हास्य व्यंग्य की रचनाएँ लिखी हैं, पर मुझसे लगता है कि पत्नी और पति के सम्बन्धों को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया हास्य वैसा ही घटिया है, जैसा साली-जीजा का हास्य और देवर-भाभी का हास्य। और पत्नी का न होना ही लोगों को बड़ा बड़े-से बड़ा हास्य-व्यंग्यकार बना देता है।

खैर बात केवल इतनी-सी थी कि मैंने हर पढ़े-लिखे परिवार में पत्नी को समाचारपत्र का चिर-विरोधी पाया है। पत्नी यह चाहती है कि सुबह उठकर पति उसकी ओर ध्यान दे और पति है कि समाचार-

पत्र लेकर बैठ जाता है। वैसे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और नियमों के आधार पर पत्नी का अधिकार प्रत्येक अवस्था में समाचारपत्र से अधिक है। फिर भी पति यदि पत्नी को अधिक समय और ध्यान न दे तो पत्नी का समाचारपत्र विरोधी हो जाना बहुत आवश्यक और उचित है।

तो सवेरे उठकर भले आदमियों के समान मैं समाचारपत्र पढ़ता हूँ। मैं समाचारपत्र केवल समाचारों के लिए पढ़ता हूँ। न तो मैं नौकरी ढूँढ़ता हूँ, न किराये का मकान, न पुरानी विदेशी वस्तुएँ, जो हर इतवार को बड़े लोगों के मुहल्लों में नीलाम होती हैं, न लड़के-लड़कियों के रिश्ते ढूँढ़ता हूँ और न ही दालोंवालों के भाव इत्यादि देखता हूँ। मैं तो केवल और शुद्ध समाचारपत्र पढ़ता हूँ। इस प्रकार मैं समाचारपत्र आधे समय में ही पढ़ लेता हूँ और अपनी पत्नी का आधा विरोध बचा जाता हूँ। मुझे ऐसे लोगों पर बड़ी दया आती है, जो समाचारों के अतिरिक्त ये सारी चीजें पढ़ने के लिए भी पत्नी का विरोध सहन करते हैं।

इधर, पता नहीं क्यों, मेरे मस्तिष्क पर देशी-विदेशी चीजों की तुलना छाई रहती है। मैं देखता हूँ कि मेरे आस-पास, और हो सकता है कि सब जगहों का यही हाल हो, विदेशी चीजों के प्रति पागलपन बढ़ता जा रहा है। कोई भी चीज हो—खाने की हो, पहनने की हो, ओढ़ने-विछाने की हो, सजाने की हो, वांटने की हो, कुछ भी हो, पर यदि विदेशी हो तो अधिक पसन्द की जाती है। मेरे एक मित्र ने बताया है कि सबसे बढ़िया हिन्दी का टाइप-राइटर भी इटली का हुआ करता था, जो अब सरकार इस देश में आने नहीं देती। और हिन्दी का सबसे अधिक अच्छा शब्दकोष भी एक विदेशी कामिल बुल्के ने बनाया है। तो हर चीज विदेशी ही अच्छी होती है। वस एक गेहूँ ही विदेशी किसी को पसन्द नहीं आता। या फिर पत्नी के विषय में भी दो राय हैं। पत्नी को लेकर दो सम्प्रदाय हो गये लगते हैं : एक सम्प्रदाय विदेशी पत्नी को भी अधिक वरेण्य मानता है और दूसरा देशी पत्नी के पक्ष में है।

पर मेरी बात केवल समाचारों तक ही सीमित है। ऊपर चर्चित

वस्तुओं से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वैसे मैं यह नहीं कहता कि विदेशी समाचार भी भारतीय समाचारों से अच्छे होते हैं, पर इतना जरूर कहता हूँ कि उनमें अन्तर अवश्य होता है और बिना समाचार पढ़े, केवल ऊपर की सुखियाँ देखकर ही आप बता सकते हैं कि समाचार देशी है कि विदेशी।

नहीं, इसमें ज्योतिष की कोई बात नहीं है। सीधी-सी बात है कि यदि समाचार अंतरिक्षयान के विषय में है तो वह विदेशी है। रूस का भी हो सकता है और अमरीका का भी, पर वह भारतीय समाचार कभी नहीं हो सकता। पर यदि किसी नयी प्रकार की बैलगाड़ी के आविष्कार का समाचार है तो वह निश्चित रूप से भारतीय समाचार है। यदि किसी अभिनेत्री के सातवें तलाक अथवा आठवें विवाह का समाचार है, तो भी वह विदेशी है और सम्भवतः इटली का है, पर यदि किसी युवक के अपनी बूढ़ी सास को छुरा घोंपकर मार डालने का समाचार है तो वह इसी पवित्र भूमि का समाचार है। कारों की रेस में गिरकर मरने का समाचार विदेशी होगा और कांस्टेबल द्वारा किसी वृद्ध के चौदह रुपये छीनने का समाचार भारतीय होगा। एटम बम बनाने का समाचार अवश्य ही विदेशी होगा और परमाणु शक्ति द्वारा मूँगफली का आकार बढ़ाने और मुर्गी के अंडे में से एक से अधिक जर्दियाँ पैदा करने के चमत्कार का समाचार हमारे प्यारे वतन का ही हो सकता है।

यह तो समाचारों की एक कोटि मात्र है। और भी बहुत प्रकार के समाचार होते हैं, जैसे अब विकसित देशों को सहायता देने का समाचार अमरीकी होगा और दल-बल बदलने की घोषणा शुद्ध भारतीय घटना होगी। किसी सैनिक अफसर के द्वारा आक्रमण कर देने की घोषणा चीनी समाचार होगा और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने की अपील भारतीय होगी।

पर समाचारों की एक कोटि वह है, जिनकी तुलना के विदेशी समाचार मुझसे आज तक कभी भी किसी भी समाचारपत्र में दिखाई नहीं दिये, वे समाचार केवल भारतीय होते हैं। बकरी का आदमी के मुंहवाला बच्चा, पूँछवाला आदमी का बच्चा, वकील की बेटी का

अभियुक्त के साथ भाग जाना, जलसे-जूलूस सत्याग्रह, भूख-हड़ताल और भापण, भापण तथा भापण... और फिर राष्ट्रीय ध्वज का जलाया जाना और राष्ट्रीय गीत का अपमान—ये सब शुद्ध भारतीय समाचार हैं। इन समाचारों का तो काँपीराइट ही हमारा है। इन पर हमारा इतना अधिकार है कि यदि ये घटनाएँ किसी और देश में हों भी तो समाचारपत्रवाले उस देश के नाम से समाचार इस भय से नहीं छापेंगे कि कहीं उनको झूठा न समझ लिया जाय।

जैसे मैंने यह भी सुना है कि इस प्रकार के भारतीय समाचार पढ़कर विदेशों में बहुत सारा असन्तोष इसलिये भी फैल रहा है कि वहाँ के लोगों में इन समाचारों ने हीन भावना को बहुत बढ़ा दिया है। इसकी प्रतिक्रिया दो रूपों में हुई है। कुछ देशों ने अपनी सरकार से यह अनुरोध किया है कि भारतीय समाचारपत्रों पर रोक लगा दी जाये और ये पत्र उनके देशों में न बिकें। पर अधिक समझदार देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से इन समाचारों का आयात चाहा है। आप अमरीका को एक समाचार देंगे कि राष्ट्रपति भवन की सबसे वरिष्ठ मुर्गी का तीसरा अण्डा चोरी हो गया है और अमरीका इस समाचार के बदले आपको एक पैटन टैंक भेज देगा। विदेशी मुद्रा कमाने का इससे अच्छा तरीका कोई नहीं हो सकता। क्योंकि यदि वह अण्डा चोरी नहीं होता तो आप उस अण्डा का ज्यादा-से-ज्यादा आमलेट बना लेते, पर उसका एक पैटन टैंक किसी हालत में नहीं बन सकता था, चाहे आर्डिनेंस फैक्टरियाँ कितना जोर लगा लेतीं। पर वही स्थूल अण्डा जब सूक्ष्म समाचार के रूप में परिवर्तित हुआ तो एक पैटन टैंक बन गया। यही कारण है कि हमारे शास्त्रों में लिखा है कि स्थूल से सूक्ष्म का महत्व कहीं अधिक है। मानव से ब्रह्म इसीलिये अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि मनुष्य स्थूल है और ब्रह्म सूक्ष्म। फिर भी न जाने क्यों कुछ लोग अपने उन नेताओं से नाराज रहते हैं, जो इस पवित्र देश के विभिन्न भाग अपने पड़ोसियों को उपहार स्वरूप देकर देश को अधिक-से-अधिक सूक्ष्म बनाना चाहते हैं।

चाँदी की दीवार और निर्धन का सर

मैंने रेडियो चलाया तो कोई बड़े दुखी मन से उदास स्वर में गा रहा था—‘चाँदी की दीवार न तोड़ी। प्यार भरा दिल तोड़ दिया। इक धनवान की बेटी ने निर्धन से नाता तोड़ लिया।’ मेरे मन ने कहा—भाई मेरे तो दुखी होने की क्या बात है, शुक्र मना बच गया।

उस दिन एक भरी हुई बस के दरवाजे के साथ मैं छिपकली के समान लटका हुआ था। बस चली तो सड़क के किनारे खड़ी एक दूसरी बस से बुरी तरह टकरा गया। जाने कैसे, चोट लगने पर भी हाथ नहीं छूटा, और बस के साथ लटका हुआ चला गया। मैंने कई बार कहा भी—‘बड़ी चोट लगी है।’ पर साथ लटकी हुई छिपकलियों की भीड़ ने हर बार यही कहा, “भाई साहब ! बच गये।” पहले तो खीझ हुई। पर जब सोचा तो लगा, छिपकलियों की भीड़ ठीक कहती है। जिस प्रकार यह दुर्घटना हुई थी, उससे सर भी फट सकता था। दिमाग की कोई नस भी फट सकती थी और मैं मर भी सकता था। पर हुआ मात्र इतना ही था कि सर और कंधे को चोट भर लगी थी। यही समझना चाहिए कि मैं बच गया।

रेडियो में उस दुखी स्वर में गानेवाले को भी मैं यही कहना चाहता था—बच गया भाई। शुक्र मना परवरदिगार का कि तेरी प्रेमिका ने चाँदी की दीवार नहीं तोड़ी। यदि वह चाँदी की दीवार

तोड़ती तो तुम्हारा प्यार भरा दिल तो नहीं टूटता, पर किसी दिन वेलन से तुम्हारा सर जरूर टूटता। मेरा अनुभव है कि जिस किसी प्रेमिका ने प्रेमी के लिए चाँदी की दीवार तोड़ी, उसने उस गरीब का सर तोड़ने का प्रबन्ध भी साथ-साथ ही कर दिया।

एक ऐसा ही किस्सा मेरे पिछवाड़े की गली में हुआ। एक धनवान की बेटी, अपनी आदत के अनुसार, एक निर्धन से प्यार कर बैठी। निर्धन कोई ऐसा निर्धन भी नहीं था। उसने अपने दो-तीन दोस्तों के साथ मिलकर तीन कमरों का मकान किराये पर ले रखा था और एक नौकर भी। लड़के सुबह तैयार होकर निकल जाते, शाम को लौटते। नौकर के हाथ का खाकर मस्त रहते। पर तभी धनवान की बेटी उससे प्यार कर बैठी। धनवान की बेटी कालेज से क्लासें कट करती और निर्धन लड़का दफ्तर से छुट्टियाँ मारता।

उनके प्यार में एक बहुत बड़ी बाधा थी—समाज नाम का भयानक जन्तु, जिसे मुफ्त में दूसरों के मामलों में टाँग अड़ाने की आदत है। मेरा बच्चा कुछ अस्वस्थ था और वह चाहता था कि उसे गोदी में लिये-लिये टहला जाये। तो मैं या मेरी पत्नी जब भी अपने फर्स्ट फ्लौर के फ्लैट के पिछले बरामदे में बच्चे को बहलाते हुये टहलते—पिछवाड़े की गली का मकान हमें दिखायी पड़ता। वह लड़की जब भी लड़के से मिलने के लिये आती और दरवाजा खटखटाते हुए चुपके से नजरें घुमाकर देखती कि कोई देख तो नहीं रहा तो वह हमें यानी समाज को खड़ा भाँकते पाती। वह दाँत पीसकर समाज को गालियाँ देती और दरवाजा फिर खटखटा देती।

लड़का भी मुझे यानी समाज को भाँकते पाता तो मुस्करा देता। उसकी मुस्कान कहती : “भाई साहब ! आप मेरी बात समझते हैं न ! कभी आप भी तो जवान रहे होंगे।” उसकी मुस्कान की बात सुनकर दाँत पीसने की बारी मेरी होती...! मैं दाँत पीसता और कहता—“साले ! मैं तो अभी भी जवान हूँ। कभी जवान रहा हूँगा का क्या मतलब ? तू मुझे अभी से बूढ़ा समझता है।”

खैर धनवान की बेटी और निर्धन का प्यार चलता रहा और

समाज—यानी मैं और मेरी पत्नी—देखता रहा ।

फिर पता चला कि धनवान की बेटी ने चाँदी की दीवार तोड़ दी है और उसका निर्धन से विवाह हो गया है । विवाह हो ही गया तो समाज ने उनसे समझौता कर लिया, यानी उनकी हमसे मित्रता हो गयी । वे हमारे घर आने-जाने लगे ।

मैंने एक दिन लड़के से कहा, “यार ! शादी से पहले तो तुम बड़े हँसते-मुस्कराते रहते थे, अब तुम्हें क्या हो गया है ? माथे पर हमेशा ही त्र्यौरियाँ चढ़ाये रखते हो ।”

वह बोला, “भाई साहब ! मेरी शादी के बाद मेरे दोनों दोस्त मकान छोड़ गये हैं । मकान का किराया बहुत है । मेरे इतने थोड़े वेतन में काम नहीं चलता ।”

“तो छोटा मकान ले लो ।”

“मेरी पत्नी को अपने डैडी के दस कमरोंवाली कोठी के खुले वातावरण में रहने की आदत है । तीन कमरों के फ्लैट में उसका दम घुटता है । इससे छोटा घर लूंगा तो वह सचमुच मर जायेगी ।”

“तुमने शादी से पहले नहीं सोचा था ?”

“सोचा था भाई साहब !” वह गरीब रोन लगा, “तब कहती थी तुम साथ होगे तो नीले आकाश के नीचे कहीं भी रह लेंगे ।”

“तो अब रह क्यों नहीं लेते ?”

“कैसे रह लें । अब साला यह नीला आसमान रात को ओस गिराता है—दिन को धूप और पानी । वह बीमार हो जायेगी ।”

“तुमको शादी से पहले ही उसे सब-कुछ बता देना चाहिये था ।”

मैंने कहा ।

“मैंने बताया था ।”

“फिर ?”

“फिर उसने कहा कि हम एक समय पका-खा लिया करेंगे ।”

“अब क्या कहती है ?”

“वह तो अब भी वही कहती है, पर मैं नहीं मानता ।”

“क्यों ? क्या तुम भूखे नहीं रह सकते ?”

“नहीं भाई साहब ! आप बड़े भोले हैं ।” वह मुस्कराया, “एक समय पकाने-खाने का अर्थ दूसरे समय भूखा रहना नहीं है । दूसरे वक्त बाहर किसी रेस्ट्रॉ में खाना है ।”

एक दिन पता चला कि लड़का बीमार हो गया है । मैं उसका हाल-चाल पूछने गया । पता चला कि उसे फ्लू हो गया है—क्योंकि ठंड लग गई थी ।

“ठंड कैसे लग गई भई ?” मैंने पूछा ।

“स्कूटर पर जाता हूँ न !” उसने बताया, “सर नंगा होता है । हवा खा गया ।”

“सर पर टोपी क्यों नहीं पहनते ?”

“है नहीं ।” उसने कहा, “साठ रुपए की हेलमेट है, जिससे ठण्ड भी नहीं लगती और एक्सिडेंट में भी बचाव होता है । पर अपने बजट में इतने पैसे ही नहीं हैं ।”

मैं क्या कहता । लड़का सच कह रहा था । मेरे पास भी इतने पैसे नहीं थे कि उसकी सहायता करता । चुपचाप चला आया ।

एक दिन देखा, उसके सर में पट्टी बंधी हुई है । समझ गया कि स्कूटर का एक्सिडेंट हो गया होगा । आये दिन होते ही रहते हैं । बेचारे के पास सर के लिये हेलमेट नहीं थी, चोट लग गई होगी ।

पूछने पर पता चला कि स्कूटर का एक्सिडेंट नहीं हुआ था । एक्सिडेंट घर में ही हो गया था । कल उनके विवाह की पहली वर्षगांठ के अवसर पर उससे कोई भेंट नहीं मांगी । जानती थी, निर्धन से विवाह किया है तो इतना तो भुगतना ही पड़ेगा । पर, दुनिया की बात करने से उसे कौन रोक सकता था । उसने कहा, “समझ में नहीं आता कि दुनिया क्या करती है । कल मिसिज भाटिया बता रही थी कि उसके पति ने उसे वैडिंग एनिवर्सरी पर ज्वेलरी का सेट लेकर दिया है और हम हैं कि दो-ढाई सौ की एक साड़ी भी नहीं खरीद सकते ।”

“उनके पति बिना टोपी के ठण्ड में हवा खाकर बीमार भी नहीं होते ।” लड़के ने चिढ़कर कहा ।

“मुझे क्यों सुना रहे हो—मैं तुमसे कुछ मांग रही हूँ क्या ?” लड़की

नाराज हुई ।

“माँग नहीं रही तो और क्या कर रही हो?”

बस बात बढ़ गई । भगड़ा हुआ और लड़की ने बेलन चला दिया ।
लड़के का सर टूट गया ।

मुझे लगा कि लड़के को यह बात भी विवाह से पहले ही सोच लेनी चाहिये थी—जो लड़की चाँदी की दीवार तोड़ने का साहस कर सकती है, उसके लिये निर्धन का सर तोड़ना बड़ी मामूली-सी बात होती है ।

पर उसके बाद फिर उनमें समझौता हो गया है । सुना है लड़की ने अपनी आदतें सुधार ली हैं । वह किरफायत से खर्च करना सीख गयी है । बहुत थोड़े में गुजारा कर लेती है । लड़का मुझे समय-समय पर बताता रहता है । जब कोई उत्सव आता है तो पैसे के लिए अधिक हाथ-तौवा नहीं मचाती । जितना जरूरी होता है उतना ही खर्च करती है । किसी की शादी हो तो लड़के के सूटों में से एक प्रेस करवा देती है । लड़के के पास तो तीन सूट हैं—तीनों नये के नये । पर अपने लिये उसे कुछ-न-कुछ करना ही पड़ता है बेचारी के पास कुल पच्चीस साड़ियाँ हैं—वे भी साल-भर पुरानी । तो अपने लिये सौ-सवा-सौ की एक साड़ी ले आती है । लड़के के लिए नये सूट की जिद करती तो पाँच-साढ़े-पाँच सौ खर्च हो जाते । अब तो सौ-सवा-सौ में ही गुजारा चल गया ।

बाद में यह भी पता चला कि वह समझदार भी लड़के से ज्यादा है । पिछला वेतन मिला था तो उसने लड़के को एक नया गर्म सूट सिलवाने के लिए चार सौ रुपये दिये थे और स्वयं अपनी साड़ी के लिये कुल ढाई सौ रुपये ही रखे थे । वह तो समझदार थी—अपनी साड़ी ले आई; और लड़का ऐसा घनचक्कर निकला कि सूट के वे चार सौ रुपये घर में ही खर्च कर बैठा । वह पिछली बार मेरी पत्नी को बता गई है कि यह लड़का ऐसा निकम्मा है कि जितने भी पैसे हों सब घर में खर्च कर देता है । पैसा तो उसके हाथ में रुकता ही नहीं है ।

पर वह लड़का मुझे फिर से समाज समझने लग गया है और मुझसे नाराज रहता है । उसने किसी से कहलवाया है कि मैं उसकी शादी के पहले भी समझता था कि विवाह के बाद उसके साथ यह सब

कुछ होगा। और जानते-बूझते मैंने उसे कुछ भी बताया नहीं। आखिर समाज का लाभ ही क्या, यदि वह समय पर उचित चेतावनी न दे। यह साला समाज होता ही दुष्ट है। यह तो चाहता है कि गरीब लड़के, अमीर लड़कियों से शादियाँ करें और परेशान हों। समाज बड़ा नीच होता है।

तो ऐ रेडियो में दुखी मन से उदास स्वर में गानेवाले बन्धु! मैं अपने अनुभव से बता रहा हूँ और समाज के रूप में उचित समय पर चेतावनी दे रहा हूँ। उस धनवान की बेटी ने यदि चाँदी की दीवार नहीं तोड़ी तो समझो, तुम्हारे सर पर एहसान किया। दिल टूट गया तो कोई बात नहीं। दिल का टूटना एकदम खतरनाक नहीं है। टूटे दिलवाले रोने के लिए बहुत वर्षों तक जीते हैं और स्वस्थ जीवन बिताते हैं; किन्तु सर टूटता है तो दिमाग की नसें फटने का डर होता है, जिससे आदमी मर सकता है।

पर यह रेडियोवाला मेरी बात सुनता ही नहीं है—अपनी ही हाँके जा रहा है—

“चाँदी की दीवार न तोड़ी, प्यार भरा दिल तोड़ दिया,
इक धनवान की बेटी ने निर्धन से नाता तोड़ दिया...”



कैनोपी का स्वयंवर

अंग्रेजों का विचार था (शायद) कि वे इस देश में सदा के लिए, या कम-से-कम, काफी लम्बे अरसे के लिए रहेंगे। इसीलिए उन्होंने अपने लिए एक नगरी बसाई—नयी दिल्ली दफ्तर बनाया—नया सचिवालय। और गवर्नर जनरल के लिए वह महल बनाया, जिसे आजकल भारतीय लोग राष्ट्रपति-भवन कहते हैं। उसी सड़क पर, आगे चलकर, राष्ट्रपति-भवन के ठीक सामने, कश्मीरी दरवाजे, अजमेरी दरवाजे, दिल्ली दरवाजे, लाहौरी दरवाजे इत्यादि की नकल में एक दरवाजा बनवाया, जिसका नाम रखा गया—इण्डिया गेट ! वह आज भी इण्डिया गेट ही कहलाता है।

इस पिछड़े हुए देश का एक बड़ा पुराना रिवाज है कि द्वार के बाहर द्वारपाल बैठाया जाता है। पर (शायद) अंग्रेजों के यहाँ यह रिवाज नहीं है। (अपने-अपने रिवाज हैं, कोई किसी को क्या कहे)। उन्होंने इण्डिया गेट के बाहर, यानी ठीक दरवाजे पर एक छत्री बनवाई—कैनोपी ! और उसके नीचे जार्ज पंचम की मूर्ति स्थापित कर दी !



जार्ज पंचम उस कैनोपी में बैठे-बैठे अपने पुत्रों का ऐश्वर्य देखते रहे ! पर जब अंग्रेज भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता देकर चलने लगे तो पंचम

का मन कुछ डगमगा गया ।...

महात्मा गांधी के स्वदेशी आन्दोलन ने जार्ज पंचम को अपने देश की बहुत याद दिलाई ।

“ठहरो मैं भी चलता हूँ ।” जार्ज ने कहा ।

सम्राट के सामने कोई क्या कहता ? उनका विरोध कोई कैसे करता ? पर जाते हुए अंग्रेजों के चेहरों से स्पष्ट झलक रहा था कि उन्हें जार्ज पंचम का भी साथ चल पड़ना अच्छा नहीं लगता, जैसे अपने मित्रों से मिलने जाते हुए पति को पत्नी के साथ चिपक जाना अच्छा नहीं लगता ।

जार्ज पंचम ने अपनी जूतियों में पैर डाले । वे कैनोपी से निकलने ही वाले थे कि एक गोरे, कोमल हाथ ने उनकी बांह पकड़ ली ।

जार्ज ने घूमकर देखा ब्रिटिश संस्कृति खड़ी, बड़े माशूकाना अन्दाज में मुस्कुरा रही थी, “तुम भी चले गये तो मेरी देख-भाल यहाँ कौन करेगा ?”

जार्ज चिंतित हो गये । फिर उन्होंने संभलकर पूछा, “तुम साथ नहीं चल रही ?”

“नहीं !” वह मुस्कुराई । उसकी मुस्कान बड़ी आकर्षक थी ।

“अच्छा !” और जार्ज फिर अपनी जगह पर बैठ गये ।



भारत सरकार अपने कमरे में टहल रही थी, एक सिरे से दूसरे सिरे तक ! वह क्षुब्ध नहीं थी, चिंतित भी नहीं थी । बस अभ्यासवश टहल रही थी । उसे भविष्य के विषय में कुछ भी सोचने के लिए इसी प्रकार टहलना पड़ता था । आदत थी, और क्या...

नया-नया उत्तरदायित्व था । बहुत सी नयी-नयी बातें थीं । नये-नये काम थे । अधिक समय तो यही सोचते हुए निकल जाता था, कि क्या करे और क्या न करे ?

“...हाँ, जार्ज पंचम भी बैठे हैं ।” सरकार ने सोचा, “पर उनका क्या करना...” अब अंग्रेज तो यहाँ से चले ही गये हैं । आखिर जार्ज पंचम भी अब किसे देख-देखकर बैठे रहेंगे, बोर होकर चले जायेंगे !...

वैसे भी अब सम्राट का प्रतिनिधि, कोई अंग्रेज गवर्नर-जनरल तो आयेगा नहीं। कोई-न-कोई भारतीय ही राष्ट्रपति होगा। राष्ट्रपति की सवारी इधर से निकला करेगी, तो जार्ज पंचम सवारी की शोभा देख-देखकर जल-भुन जायेंगे। खुद ही उठकर चल देंगे—और क्या ?

“...वैसे भी”, सरकार ने टहलते-टहलते, रुककर सोचा, “अपने भूतपूर्व स्वामी से अशिष्ट व्यवहार करना अच्छा नहीं है !”

“तो ?” सरकार के सामने प्रश्न था।

“तो क्या,” सरकार ने स्वयं से कहा, “उन्हें अपने हाल पर छोड़ दो, चले ही जायेंगे, बैठे थोड़ी रहेंगे।”

सरकार, ऐसे ही बहुत सारी बातों को स्वतः निश्चित मान लेती है।...आदत है उसकी।



लोगों ने सोचा, सरकार नेताओं की है और नेता समझदार होते हैं; तो समझदारों की बात मानो और स्वीकार कर लो कि जार्ज पंचम अपने आप बोर होकर यहाँ से चल देंगे। और वैसे भी अंग्रेज अपने देश में हमारे नेताओं की मूर्तियाँ स्थापित कर रहे हैं। सारा संसार कहता है कि यह उनकी उदारता है, तो फिर हम ही क्यों अपनी दासता के प्रमाणों को हटाकर अपनी नीचता का प्रमाण दें। बैठे रहें, बैठे रहें, कब तक बैठे रहेंगे...।

पर (कम-से-कम, इस देश में) इतिहास अपने आपको दुहराता है और हमें इतिहास की पुनरावृत्ति देखने का शौक है। मुगलों ने भी समझा था कि ये स्वयं ही चले जायेंगे और वे नहीं गये—हमने भी समझा था कि चले जायेंगे, पर वे नहीं गये।

जब जार्ज पंचम ने हृद ही कर दी—बोर होने के आसार ही नहीं दिखाये और उनका धैर्य देख-देखकर जनता उनसे बोर होने लगी तो नेताओं की सरकार डर गयी। भई जाहिल देश की अशिष्ट जनता का क्या भरोसा। नमकहराम हैं सब—भूतपूर्व स्वामी का अपमान भी कर सकते हैं। कोई अलकतरा भी पोत सकता है, कोई तोड़-फोड़ भी सकता है। अच्छा है जार्ज पंचम को हटा दिया जाए।

तो सरकार ने बहुत सारी क्षमा प्रार्थना के पश्चात् जार्ज पंचम को उस कैनोपी से हटा लिया। कैनोपी से किसी को कुछ लेना-देना नहीं था। वह वहीं खड़ी रही। पर जार्ज को यदि इण्डिया गेट के सामने, सरकार की देख-रेख में खड़े रहने पर भी खतरा था तो देश में कहीं भी खतरा हो सकता है। जनता तो एक जैसी ही थी, यहाँ से वहाँ तक !

तो जार्ज पंचम को सम्पादक द्वारा अस्वीकृत रचना के समान सखेद, सधन्यवाद विलायत लौटा दिया गया !



उस रात एक बड़ी विचित्र घटना घटी। ऐसी आशा किसी को भी नहीं थी, इसलिए उसके बचाव के लिए कोई प्रबन्ध भी नहीं किया गया था। हुआ यह कि रात होते ही वह कैनोपी, श्मशान में रोती हुई किसी सद्यः विधवा के समान चीत्कार करने लगी। वह विलाप कर रही थी—“हाय मेरा सुहाग लुट गया। हाय ! मैं खाली हो गयी। मुझे मेरा पति दो। उसे नहीं लौटा सकते तो कोई और पुरुष दो ! मैं अकेली नहीं रह सकती ! हाय ! मेरी रातें नहीं कटतीं....।”

देश के किसी कोने में कोई रोये, कोई विलाप करे तो उसे अनसुना किया जा सकता है। वैसे भी सारी दुनिया जानती है कि दिल्ली कानों से कुछ-कुछ बहरी है—ऊँचा सुनती है। इसलिये कई बार सुनकर भी अनसुना करने का स्वाँग भर लेती है। पर, बीच दिल्ली के कलेजे में, राष्ट्रपति-भवन के सामने उसका मार्ग रोके कैनोपी चीत्कार कर रही थी। उसे अनसुना करने का नाटक कोई कैसे करता ?

एक बात और भी हुई। देश के सारे बड़े व्यक्तियों को लगा कि यह कैनोपी तो हाथ में जयमाल लिए, स्वयंवर में खड़ी राजकुमारी के समान है। क्या पता किस पर इसका मन आ जाये और यह उसका वरण कर ले। और इस बात को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता था कि इण्डिया गेट की गोद में बैठी यह कैनोपी जिसका वरण कर लेगी, वह तत्काल बड़ा आदमी बन जायेगा। यहाँ तो प्रत्येक व्यक्ति मोहिनी के स्वयंवर में नारद हो रहा था। पैंतालीस करोड़ व्यक्ति उचक रहे थे, “देख कैनोपी !

मुझे देख । देख, मैं कैसा वाँका जवान हूँ । देख ! मैं तेरा प्रेमी, मैंने जार्ज पंचम को यहाँ से हटाया है—केवल तुझे पाने को, देख, अरे देख....।”

यह तो अराजकता की स्थिति थी । कोई भी व्यक्ति खाली कैनोपी में, जार्ज पंचम के स्थान पर खड़ा हो सकता था । नेताओं को दिल के दौरे पड़ने लगे । तत्काल नेताओं की तुरन्त-सभा बुलाई गयी ।

एक बात पर सब सहमत थे कि उस कैनोपी में किसी महान् व्यक्ति की मूर्ति स्थापित की जानी चाहिए । दूसरी बात पर भी वे सहमत हो गये (आश्चर्य !) कि महान् व्यक्ति चितक, योद्धा या कलाकार नहीं हो सकता—महानता केवल राजनीतिज्ञों की वपौती है ! अतः वहाँ किसी राजनीतिक नेता की मूर्ति ही स्थापित हो सकती है ।

पर तीसरी बात पर वे सहमत नहीं हो पाये ! प्रत्येक नेता यह चाहता था कि उसे ही वहाँ स्थापित किया जाये ! इस पर कौबों की पंचायत के समान खूब झगड़ा मचा । कोई किसी को क्या रोकता, सभा बड़े नेता थे—काफी बड़े-बड़े । जब काफी काँव-काँव हो चुकी तो दो नेताओं के नाम चुन लिए गये ! वे नाम इतने बड़े थे कि बाकी नेताओं को धीरे-धीरे चुप हो जाना पड़ा । क्या करते बेचारे !

पर मूर्ति तो एक ही स्थापित करनी थी । दो नेताओं में से किसी एक को कैसे चुना जाए ?

सहसा, दोनों में से जो अधिक उदार नेता थे, वे खड़े हो गये । बोले, “सज्जनो ! मैं अपने मित्र के पक्ष में, उस कैनोपी में स्थापित होने का अधिकार एक शर्त पर छोड़ने को तैयार हूँ ।”

“क्या ?” नेताओं ने बिगड़े-कोरस के स्वर में पूछा !

आखिर भारत देश है । आदर्शवादी लोग यहाँ नहीं होंगे तो कहाँ होंगे । त्याग, बलिदान, उदारता—ये तो इसी देश में पाये जाते हैं । सब नेताओं को आशा हो गयी कि अब यह समस्या सुलभ गयी । चलो इस देश की एक समस्या तो सुलभी । अगले वर्ष गणतंत्र दिवस के भाषणों के लिए मसाला हो गया....

“वह यह कि,” उदार नेता बोले, “...कि मेरे मित्र को तो उस कैनोपी में स्थापित कर दिया जाये । और मैं...और मैं चूँकि प्रदर्शन में

विश्वास नहीं रखता। छिपकर, गुप्त रूप से जनता की सेवा में ही मेरा विश्वास रहा है, इसलिए उस कैनोपीवाली सड़क पर ही, उससे हटकर, उस दीवार के पीछे मुझे राष्ट्रपति-भवन में स्थापित कर दिया जाये...।”

सहसा नेताओं का ध्यान एकदम पलट गया।...वे लोग क्या करने जा रहे थे?...उस कैनोपी का महत्त्व तो सब समझ रहे थे। सब ही उसमें स्थापित होने के इच्छुक भी थे। पर यह...यह खतरा? इसकी ओर तो किसी का ध्यान ही नहीं गया था। यह तो किसी ने सोचा ही नहीं था कि उस कैनोपी में जिसको भी स्थापित किया गया, वह अवसर देखकर, लोगों की आँख बचाकर सीधा चलता हुआ राष्ट्रपति-भवन में घुसकर वहाँ स्थापित हो जायेगा।...तो फिर?...उस कैनोपी में तो कोई ऐसा ही व्यक्ति स्थापित होना चाहिये, जो राष्ट्रपति-भवन की ओर देखता तो रहे, पर ललचाई हुई नजरों से न देखे। और वह कभी उसमें घुसपैठ का प्रयत्न न करे...

यह काम तो कोई संत ही कर सकता था—जो राष्ट्रपति भवन को देखता तो रहे, पर उसमें घुसने का प्रयत्न न करे। इण्डिया गेट के बाहर बैठा-बैठा ही सब कुछ देखा करे। राजनीतिज्ञों में ऐसा संत कौन होगा?

एक ही, निश्चित उत्तर था—हमारे बापू! राष्ट्रपिता! महात्मा गांधी! भला राष्ट्रपिता, राष्ट्रपति के भवन में क्यों जायेंगे?

नेता लोग तीसरी बात पर भी सहमत हो गये—“उस कैनोपी में महात्मा गांधी को प्रतिष्ठित किया जाये।”



उस रात सहेलियों से कैनोपी को सूचना मिल गयी कि उसकी बातचीत महात्मा गांधी से पक्की हो चुकी है, लगभग सगई ही समझो। अब उसे रोने की आवश्यकता नहीं थी। वह अब उजड़ी माँगवाली विधवा नहीं थी। उसका भविष्य अंधकारमय नहीं था। वह अब यतीम और निराश्रित नहीं थी—वह तो राष्ट्रपिता की वादत्ता थी। उसके पास प्यार करने को कोई था। वह उसके विषय में सोच सकती थी, उसका नाम सुनकर

शरमा सकती थी, उसके चारों ओर भविष्य के सपने बुन सकती थी...

उस रात इण्डिया गेट के बाहर कोई नहीं रोया। कल की रात-वाला वह भयानक श्मशान आज बड़ा रोमानी हो उठा था। वहाँ हल्की-हल्की ढोलक पर सोहाग गाये जा रहे थे और सहेलियों की चुहल के साथ-साथ हँसी की मधुर आवाजें अठखेलियाँ करती फिरती थीं।

●●

दूसरे दिन वहाँ वास्तुकार आये, मूर्तिकार आये। आखिर कैनोपी का विवाह था। साधारण बात नहीं थी। पूरी तैयारियाँ होनी चाहिये थीं। काफी चहल-पहल रही...

कभी कोई कैनोपी का रूप देखता, कोई आकार देखता, कोई उसकी ऊँचाई देखता, कोई चौड़ाई। मूर्ति इतनी ऊँची हो, इस मुद्रा में हो, इस दिशा में हो, पत्थर का यह रंग हो...

कैनोपी को लगा, कोई दर्जी उसके जोड़े का नाप ले रहा है, कोई सुनार उसके चूड़े के लिए उसकी कलाई नाप रहा है, कोई उसकी चुनरी का रंग पसन्द कर रहा है, कोई गोटे का भाव कर रहा है।

कैनोपी शरमा-शरमाकर मुस्कराती रही और जब उससे न रहा गया तो उसने चुन्नी अपने मुँह में ठूस ली। यह हँसी भी भोई कैसी बेवक्त...

●●

पर वास्तु-विशेषज्ञ निराशा से सर हिला रहा था। "ओह नो ! इट इज इंपासिबल ! यह सम्भव ही नहीं है। आप लोगों ने यहाँ बापू की मूर्ति स्थापित करने का फैसला कैसे कर लिया ? यह देखिये..." और उसने हाथ में पकड़ी छड़ी से कैनोपी को छुआ, "लुक एट इट ! इसे देखें ! यह तो शुद्ध राजकीय छत्र है। राजसी ठाट है। यह तो सम्राट की मूर्ति के ही उपयुक्त है। इसमें लँगोटीधारी बापू कैसे जँचेंगे ? ओह नो ! किसी प्रकार भी उचित नहीं है। भोंपड़ी के बाहर मोगल गार्डन नहीं लगाया जा सकता, अकालपीड़ित कंकाल के चित्र को सुनहरे फ्रेम में नहीं मढ़ा

जा सकता, जन-नेता महात्मा गांधी की मूर्ति राजसी कैनोपी में कैसे फरेगी ? ओह नो !....”

कैनोपी ने सुना, पण्डित कह रहा था, “कन्या राजकुमारी है । राजा की बेटी है, साम्राज्य होने के लिए जन्मी है । फकीर के साथ इसके नश्वर नहीं मिलते... यह कंचन की काया, ये रसीले होंठ... ये मदभरे नयन... ये क्या संन्यासी के साथ सजेंगे... नहीं यह जोड़ी नहीं सजती, यह विवाह नहीं होगा...।”



उस रोज कैनोपी का सुहाग दूसरी बार उजड़ा ।

आज कैनोपी प्रेत हो गयी ! उसकी चीखें इण्डिया गेट की नहरों में कँपकँपी उठाने लगीं । वह भयानक हो गयी ! खप्पर खाली है ! किसका खून पिऊँ ?

नेताओं की सभा जुड़ी ! सब के चेहरे उड़े हुए थे । उन्होंने तो समझा था कि बापू सम्भाल लेंगे । भला ऐसी भी कोई समस्या हो सकती है, जो बापू के नाम से शांत न हो ? विचित्र जमाना आ गया । रामबाण औषधियाँ भी निरर्थक हो रही हैं । बापू भी अपने बेटों की समस्या नहीं सुलझा पा रहे...

तो ?

आखिर एक महान् नेता उठे । बोले, “बन्धुओ ! आप लोग बहुधा ये भूल जाते हैं कि आप लोग भारतीय हैं ।”

“नहीं, यह झूठ है ।” लोगों ने जोरदार नारे लगाये, “यह हम पर झूठा लांछन है । हम अपने महान् देश को कैसे भूल सकते हैं ? हम अपनी राष्ट्रियता को कैसे भूल सकते हैं...।”

“बन्धुओ ! मेरा मतलब यह नहीं था ।” महान् नेता बोले, “हम अपनी आकांत भूल जाते हैं । वह कैनोपी अंग्रेजों ने बनायी थी और उन्होंने ही उसमें जार्ज पंचम की मूर्ति स्थापित की थी । अब आप यह कैसे सोच सकते हैं कि आप अंग्रेजों के कामों को सुधार सकते हैं, आप उनकी चीजों को परिवर्तित कर सकते हैं, आपकी भाषा उनकी भाषा

की जगह ले सकती है, आपकी मूर्तियाँ उनकी मूर्तियों का स्थान ले सकती हैं... आप लोगों का यह दुस्साहस !” महान् नेता क्रोध में थर-थर काँप रहे थे ।

अन्य नेताओं ने महान् नेता के तेज के सामने हाथ जोड़े, घुटने टेके और भक्तों की भीड़ के समान बोले, “धन्य प्रभु, धन्य, अब आप ही हमें कोई मार्ग दिखाएँ ।”

“अब अपनी भूल स्वीकार करो !” महान् नेता विजली के समान कड़के, “और अंग्रेजों से यह प्रार्थना करो कि वे लोग दया करके जार्ज पंचम की मूर्ति तुम्हें लौटायें और उसी मूर्ति को उस कैनोपी में पुनः स्थापित करो ।”

“धन्य प्रभु ! धन्य !” नेताओं ने उनकी आरती की, “ऐसा ही होगा ।”

और सब नेता विलायत भेजा जानेवाला पत्र लिखने पर जुट गये ।



खोज गरीबी के कारणों की

मुझे जिनसे मिलाया गया, वे योजना-आयोग में थे। हमें एक-दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई। किसी से मिलते हुए मैं नेपोलियन हो जाता हूँ, जो नये द्वीप पर उतरकर अपनी नौकायें जला चुका होता है। मेरे पास विकल्प कोई नहीं होता। मुझे प्रसन्न होना ही पड़ता है, अगला चाहे योजना आयोग में हो, या स्मगलिंग रैकेट में।

“आप अभी तक रिटायर नहीं हुये ? आपकी आयु तो काफी लगती है।” मैंने पूछा।

उन्होंने मुझे ऐसे देखा, जैसे मैंने अपने स्वभावानुसार फिर कोई अशिष्ट बात कह दी हो।

महिलाओं से आयु की बात करना अशिष्टता है, यह मैं जानता था; पर उनसे मिलकर मैंने अनुभव किया कि सरकारी अधिकारियों से उनकी आयु की बात करना भी उतनी डिग्री की अशिष्टता है। आयु की बात से जहाँ महिलाओं के रूप के भ्रम के टूटने की आशंका होती है, वहाँ सरकारी अधिकारी की जेब तथा अधिकार का भेद भी उघड़ सकता है। वैसे महिलाओं और सरकारी नौकरी में कोई-न-कोई बात समानांतर अवश्य है। किराये पर मकान देते हुये भी लोग ये ही दो प्रश्न पूछते हैं—आपके साथ कोई स्त्री भी है क्या ? तथा, आप सरकारी नौकर हैं न ? ये दोनों ही बातें शराफत का प्रमाणपत्र हैं।

उन्होंने कहा, “आयु से क्या होता है साहब ! हम तो रिटायर नहीं होंगे । मेरिटोरियस लोगों को रिटायर नहीं किया जाता ।”

मैं समझ गया, वे रिटायर नहीं होंगे । वे योजना-आयोग को ही रिटायर करने के चक्कर में होंगे । कहावत है न—या तो डर जाओ या डरा दो ।

“आप वैज्ञानिक हैं ?” मैंने बात आगे चलाई । अपने यहाँ ‘मेरिट’ की बात केवल विज्ञान के क्षेत्र में ही होती है—शेष स्थानों पर केवल सिनियोरिटी की ही पूछ है ।

“जी नहीं ।” वे बोले, “मैं अर्थशास्त्री हूँ ।”

मुझे एक बात सूझ गई । अपने देश में ‘शास्त्री’ शब्द ‘सरनेम’ के रूप में खूब प्रचलित हो गया है । अब नवीनतान्वेषी लोग उसमें परिवर्तन कर सकते हैं । रामसरूप शास्त्री के स्थान पर वे रामसरूप अर्थ-शास्त्री भी लिख सकते हैं । एक बार फैशन हो गया तो यह सरनेम चल निकलेगा । इस शब्द में काफी सम्भावनाएँ हैं ।

पर मैंने अपनी सूझ की बात उनसे कही नहीं । बहुधा लोग मेरी अत्यन्त मौलिक उद्भावनाओं को झेल नहीं पाते । वे मुझे मुँहफट समझ लेते हैं और मैं उन्हें मूर्ख मान लेता हूँ । दो व्यक्ति एक-दूसरे के विषय में ऐसे ब्रिलियंट निष्कर्षों पर पहुँच जायें, तो बातचीत दीमक-खाई-लकड़ी के समान टूट जाती है ।

मैंने व्यावहारिक व्यक्ति के समान अपनी उपेक्षाकर, उनको महत्व प्रदान किया, “तो आपने अवश्य यह खोज की होगी कि अपने देश के लोग इतने निर्धन क्यों हैं ?”

“अवश्य । वस्तुतः मेरा तो स्पेशल फील्ड यही है ।” वे आवनूस के कुंदे के समान, गम्भीर हो गए, “इस निर्धनता का मूल कारण यह है कि वे लोग अँग्रेजी नहीं पढ़ते ।”

“अँग्रेजी का गरीबी से क्या सम्बन्ध ?” मैं अर्थशास्त्रीय समस्या की भाषा-वैज्ञानिक व्याख्या से चौंक उठा ।

“सम्बन्ध तो मानने से होता है ।”

“अच्छा । आपकी बात का प्रमाण ?”

“चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण सम्बन्धी ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों का प्रमाण ?” उन्होंने प्रतिप्रश्न किया ।

“प्रमाण ? परिणाम । जब वे कहते हैं, तभी ग्रहण लगता है ।”

“वैसे ही मेरी बात का प्रमाण भी उसका परिणाम है । आप अपने समाज में देख लीजिए—धनी वे ही लोग हैं, जो अंग्रेजी पढ़ते हैं, अंग्रेजों की तरह सोचते, अंग्रेजों की तरह रहते हैं ।”

“पर इसका कारण ?” मैंने पूछा ।

“कारण बड़ा सीधा है ।” वे बोले, “जो अंग्रेजी पढ़ता है, वह उदार हो जाता है, सारे विश्व को अपना ही मानता है । और उदारता से धन मिलता है ।”

“कैसे ?” मैंने फिर पूछा ।

“जो अंग्रेजी नहीं पढ़ता, वह कोई देशी भाषा पढ़ेगा ।” वे आवेश में बोले, “लोग आज तक यही नहीं समझ पाये कि देशी भाषाओं के साथ एक अनिवार्य बुराई यह जुड़ी हुई है कि वे व्यक्ति को संकुचित बना देती हैं । व्यक्ति केवल अपने देश की ही भलाई सोच सकता है । व्यक्ति केवल अपने देश के प्रति ही ईमानदार रह जाता है ।”

“तो क्या हुआ ?”

“क्या नहीं हुआ ?” वे बोले, “अर्थशास्त्र का मूल सिद्धान्त है कि धन ‘वस्तु’ बेचकर नहीं, अपनी आत्मा और अपना देश बेचकर कमाया जाता है । देशभक्त इन दोनों में से कुछ भी नहीं बेच सकता ।” वे अपने अनुभव के गौरव में मंडित मुस्कराये, “यदि कहीं मैं भी इस चक्कर में पड़ जाता तो सही योजनाओं के कारण देश उन्नति कर चुका होता, योजना आयोग बन्द हो चुका होता; और मेरे बच्चे भी एवरेज और कमीने लोगों के बच्चों के समान अपने परिश्रम की रोटी खा रहे होते ।”

“ठीक ! ठीक !” मैं उनसे एकदम सहमत होते हुए बोला, “पर आपको यह नहीं लगता कि गरीबी के कुछ और कारण भी हो सकते हैं ?”

“भगवान के रूप के समान कारण अनेक हैं ।” उन्होंने मुझे बताया, “गरीब लोग आलसी हैं । वे काम करना नहीं चाहते ।”

मैं अपने स्वभावानुसार आपत्ति करने के स्थान पर उन्हें अपने अनुभव सुनाने लगा, “देखिये । मैं अभी पिछले दिनों ही दक्षिण विहार की सैर करके लौटा हूँ । मैंने देखा है कि छोटा नागपुर के आदिवासी लोग, सुबह-सवेरे नहा-धोकर तैयार हो जाते हैं और दोपहर का खाना साथ लेकर, जाकर जमशेदपुर के बाजारों में अपना श्रम बेचने के लिए बैठ जाते हैं । कोई भी व्यक्ति दैनिक मजदूरी देकर उनसे काम करवा सकता है । वे तो हर प्रकार का काम करने के लिए तैयार हैं । वे क्यों निर्धन हैं ?”

“बड़ी सीधी बात है ।” उन्होंने उत्तर दिया, “वे आलसी और काम-चोर हैं, इसलिए बाजार में जा बैठते हैं । परिश्रमी होते तो कोई इंडस्ट्री खोलते, बिजनेस करते, एक्सपोर्ट-इंपोर्ट का लाइसेंस लेते, शराब के ठेके के लिए प्रयत्न करते, स्मगलिंग का धंधा करते । पैसा क्या सड़क के किनारे बैठने से मिल जाता है ?”

मैं अपने अज्ञान पर पानी-पानी हो गया ।

“एक जिज्ञासा और है ।” मुझे सहसा एक विचार आया, “क्या ऐसा सम्भव नहीं है कि उन्हें पैसा कमाने का सही ढंग बताया जाये; और सही प्रकार के काम करने के लिए सरकार उन्हें कुछ धन-राशि उधार दे ?”

“यह सम्भव नहीं है ।” उन्होंने सिर हिला दिया ।

“क्यों ?”

“इसलिये कि यदि उन्हें धन दिया गया, वे लोग उसकी शराब पी जायेंगे । वे गरीब के गरीब रह जायेंगे, और सरकार का धन व्यर्थ ही नष्ट हो जायेगा ।”

“यह आप किस आधार पर कह रहे हैं ?” मैंने पूछा ।

“थोड़ा-बहुत आप भी पढ़े तो होंगे ही, तभी तो कालेज में लड़कों को पढ़ाते हैं ?”

“जी हाँ । पी० एच० डी० हूँ ।” मैंने बताया ।

उन्होंने मेरी अम्मा की मासी के समान मुँह बिचकाया, जो मेरी पढ़ाई से निराश होकर कहा करती थी, “अरे पगले ! इससे तो अच्छा था कि बी० ए० ही कर लेता । यह तू क्या कर बैठा ।”

मुझे अपनी ओर जिज्ञासु दृष्टि से ताकते देखकर, उन्होंने मुझे धैर्यपूर्वक समझाना शुरू किया, “अंग्रेजी की एक कहावत है, ‘मनी करप्ट्स’ धन आदमी का चरित्र नष्ट कर देता है। अब अंग्रेजी में कही गई बात गलत तो हो नहीं सकती। तो यह सिद्ध हुआ कि आदमी तभी तक चरित्रवान है, जब तक वह निर्धन है। पैसा आते ही आदमी चरित्रहीन हो जाता है। अब आप ही बताइये कि देश के लाभ की दृष्टि से चरित्र आवश्यक है या धन ?”

“चरित्र ?” मैं बोला।

“तो आप क्यों चाहते हैं कि गरीबों को धन देकर उनका चरित्र नष्ट किया जाये। हाथ में धन आते ही वे लोग तरह-तरह की बुराइयों में पड़ जायेंगे। देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाये तो समझिये कुछ नहीं बिगड़ा, पर देश की नैतिकता नष्ट हो गई, तो हम ईश्वर को क्या मुंह दिखायेंगे।”

मुझे उस ईश्वर-भीरु व्यक्ति के चेहरे पर भगवत्कृपा का प्रकाश दिखा। मैंने पूछा, “आपका अपनी नैतिकता के विषय में क्या विचार है ?”

वे शालीनता से मुस्कराकर बोले, “दूध के धुले तो हम भी नहीं है भाई। पर हम सोचते हैं कि जिन लोगों का चरित्र भ्रष्ट हो चुका, उनका तो हो चुका, कम-से-कम शेष लोगों को तो बुराइयों से बचाया जाये। हमने धन रूपी पाप कुछ-एक लोगों तक सीमित कर दिया है, कि शेष लोग धनियों को देखकर शिक्षा ग्रहण करें और इस कुपथ पर पड़ें ही नहीं। देश को चरित्रवान लोगों की बहुत आवश्यकता है।”

“चरित्रहीन धनी वर्ग का हम क्या करें ?” मैंने पूछा

“उन पर दया करें। वे बेचारे अपने पाप की आग में जल रहे हैं।”

मैं निरुत्तरता का मौन ओढ़े बैठा रहा।

वे कुछ देर तक मुझे घूरते रहे और फिर घूरना स्थगित कर, स्नेह-विह्वल स्वर में बोले, “अच्छा भाई। बहुत बहस हो गई। बोलो, क्या लोगे ? देसी भी पी लेते हो, या केवल अंग्रेजी ही लेते हो ?”

